सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशा केकिकान्ता भुजंगम्।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम्॥

साम्यभाव पर ग्रारूढ, निष्पाप ग्रौर मोहरहित योगी के पवित्र सान्निध्य से प्राणियों में निर्वैर ग्रहिंसा का संचार होता है। उसके समीप हरिणी सिंहशिशु को ग्रौर गौ व्याघ्र के बालक को पुत्र-भाव से स्पर्श करती है। बिल्ली हंसशावक को ग्रौर मयूरी सर्प को प्रेम करने लगती है। इतना ही नहीं, ग्रौर—ग्रौर जन्तु भी स्वाभाविक जन्मजात वैर भूल जाते हैं।

अनुक्रमणिका

प्रास्ताविक

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैय्यायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्म्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ।२।

—हनुमन्नाटक

एक प्रसिद्ध उक्ति है — "देवो भूत्वा यजेद् देवं शिवोभूत्वा शिवं यजेत्" । इसका अर्थ है, स्वयं देव होकर ही देव का यजन करना चाहिए और शिव की उपासना शिव होकर ही करना ठीक है। यदि कोई मानव दीनों पर दया नहीं करता, पतितों को गले नहीं लगाता और फिर वह 'दीनबन्धु' से अपने लिए दीनबन्धुत्व और 'पतितपावन' से पतितपावनता प्राप्त करने की चेष्टा करे तो यह उसकी अनधिकार-चेष्टा है। वह अपने उपास्य का सही अर्थों में अनुवर्त्ती नहीं हो सकता। ऐसा करने के लिए उसे पहले दीनों पर करुणा करनी होगी और पतितों को अपनाना होगा। वीतरागी साधु की आँखों से सदैव करुणा की स्रोतस्विनी, हर-जटा जूट से प्रवाहित मन्दाकिनी की भांति ताप-दग्ध जीवों को शीतलता और शान्ति प्रदान करती रहती है, अतः वे ही दीन-बन्धु और पतित पावन हैं। उनसे लोक के निराश मानस में नवजीवन का संचार होता है। उन्हें मैं 'जंगमतीर्थ' ही कहता हूँ, उनका सान्निध्य हरि-कृपा से ही प्राप्त होता है— 'बिनु हरि-कृपा मिलहिं नहिं सन्ताः'।

जो जितना अधिक भटका हुआ, जितना अधिक उद्विग्न, जितना अधिक पतित होता है, वह ऐसे सन्तों की दृष्टि में उतना ही अधिक दयनीय होता है। शायद इसी कारण इन पंक्तियों के लेखक को 'भक्ति-गंगा' की प्रस्तावना लिखने के लिए चुना गया है। यह मेरा अहोभाग्य है।

किसी भी धर्म के दो प्रमुख पक्ष हैं— दर्शन और भाव। दर्शन गम्भीर चिन्तन और सूक्ष्म विवेचन से सम्बद्ध है। वहाँ सामान्य व्यक्ति को स्थान नहीं है। भाव जन सामान्य की मनोभूमि है। दूसरी ओर सन्त आदर्श जीवन के प्रतीक होते हैं। वे न अदृष्ट होते हैं और न अगम्य। जन साधारण उन्हें अपनी आँखों के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत पाता है, तो उसका भावोन्मेष हुए बिना नहीं रहता। किन्तु, इसके लिए भी श्रद्धा एक अनिवार्य तत्त्व है। श्रद्धा का घनीभूत रूप ही भक्ति है।

भाव, श्रद्धा और भक्ति एक ही लहर की विविध तरंगें हैं, जिनकी अन्तिम तन्मयावस्था वही होती है जो ज्ञान की। चाहे ज्ञान-साधना हो या भक्ति-परकता। दोनों की चरमावस्था का रस 'परमानन्द' होता है। जन-जन भाव-प्रधान होता है और भक्ति उसका सहारा, जो टिकती हैं किसी इष्ट सन्त के चरणों पर—झर-झर कर झरता है करुणा का निर्झर जिनसे। यह भक्तिगंगा ऐसे ही भाव—भीने निर्झरों से बनी है, ऐसा मैं अनुभव कर पाता हूँ।

भक्ति गंगा ही है। गंगा में विविध स्रोत आ-आ कर समाते हैं और मिल कर एक हो जाते हैं, वैसे ही भक्ति में सम्प्रदाय, जाति और धर्म का भेद विलुप्त हो जाता है। यदि ऐसा नहीं तो वह न भक्ति है, न गंगा, और चाहे कुछ हो। मैं गौरवान्वित हूँ कि 'महावीर—भक्तिगंगा' सही अर्थों में भक्ति की मन्दाकिनी है। उसका प्रत्येक पद ऊँचा है — संकीर्णता से उभरा, समता में पगा और एक भाव—भीनी श्रद्धाञ्जलि में डूबा-सा। संकलन अनुपम है तो अनुवाद अनुवर्त्ति और सम्पादन परिमार्जित-ठोस विद्वत्ता की भूमि पर टिका हुआ।

मध्ययुगीन पद-साहित्य काव्य है तो संगीत भी। उसकी गेय-परकता असंदिग्ध है। जैन कवि विविध राग-रागिनियों के मर्मज्ञ थे, ऐसा इस संकलन से स्पष्ट ही है। उनके कण्ठ से फूटा स्वर-सन्निवेश अमर है। यदि आज भी ये पद परम्परागत रीति से गाये जायेंगे तो वही नाद पुञ्ज पुन: लहरेगा और वे स्वर—तरंगे पुन: विकम्पित हो उठेंगी, यह नि:सन्देह सत्य है। कसौटी पर वे खरे उतरे हैं, यह विनम्र होकर ही कहूँगा। निवेदन है कि प्रामाणिक बात कहने में अहंकार न समझा जायेगा।

प्रस्तुत 'भक्तिगंगा' परम पूज्य १०८ मुनिवर श्री विद्यानन्द जी महाराज के पावन हृदय की प्रेरणा का परिणाम है, अत: उसकी उपादेयता निश्चित ही है।

आचार्य बृहस्पति

संगीत महामहोपाध्याय, विद्यामार्तण्ड
आचार्य के० सी० डी० बृहस्पति
एम०ए०,पी०एच०डी०,डी०म्यूज
चीफ एडवाइजर, संगीत, ब्रजभाषा तथा संस्कृत
डायरेक्टरेट जनरल, आल इण्डिया रेडियो,
नई दिल्ली—१।

तीर्थंकर
महावीर-भक्ति-गंगा

विद्यानन्द मुनि

— प्रकाशक —

घूमी मल विशाल चन्द
प्रिंटर्स-स्टेशनर्स-पेपर मर्चेन्टस
दुजाना हाउस, चावड़ी बाजार,
देहली-६

आद्य मिताक्षर

इंदसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥ '

—पंचास्तिकाय १/१

सातिशय गुणधरों का वर्णन अपने में उत्तम गुणों के गर्भाधान की चिरन्तन परम्परा है । बीज को भी यदि हम सूक्ष्मता से देखें तो उसकी प्रकृति भी ऊर्ध्वमन्थी प्रतीत होती है । वह अंकुरित होने के साथ आकाश की ओर उठता जाता है । परन्तु बीज सामान्य है और मनुष्य की चेतना सविशेष है । वह प्ररोह की दृष्टि से भले ही वृक्ष वनस्पतियों से वामन हो, परन्तु ज्ञानचेतना में विशिष्ट होने से अपने में अतिशय उत्पन्न करने का सामर्थ्यधर है । उसका यह सामर्थ्य उसके अपने पुरुषार्थ का प्रातिस्विक है । पुरुषार्थ की भिन्नता ही परिणामभिन्नता की जनयित्री है तथा कर्मों की विविधता को प्रसूत करती है ।

मनुष्य अनुकरणप्रिय है और प्राचीनों के कृतिपरिणामों से लाभान्वित होने की आकांक्षा रखता है । इस आकांक्षा के क्षेत्र भद्र भी हो सकते हैं और अभद्र भी । यह इच्छा ऊर्ध्वमन्थी होने की भी हो सकती है और अधोगामी होने की भी । हमारा प्रस्तुत विषय ऊर्ध्वमन्थी मार्ग का पथिक है । इसके लिए हम अपने उस सनातन कोष का अवलोकन करते हैं जिसमें मणिनिधियों का अछोर आकर आरक्षित है । ऐसा करने से हमें दिशाबोध प्राप्त होता है तथा संचित धनका उपयोग करने की सरल-सुगम सुलभता मिलती है । श्रमण परम्परा की वह आरम्भनिधि भगवान् ऋषभदेव के चरणमूलों का स्पर्श कर संजीवन प्राप्त कर रही है । कर्मयुग के आरम्भ सूत्रधार भगवान् आदिनाथ ने राज्यसंन्यास लेकर प्रथम महाश्रमणत्व प्राप्त किया था । उन्होंने ही अहिंसा परमधर्म के उन मणिपदांकों की रचना की जिन्हें उत्तरवर्तियों ने अपनी गति के लिए अनिर्वाप्य पथदीप मानकर उसे कुशकण्टकादि से आच्छन्न होने से बचाते हुए प्रशस्त किया । अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर उसी श्रमणमार्ग के ऐदंयुगीन चरमधुरीण हैं । उनके विषय में ऐतिहासिक लेख लिखना प्रस्तावना का विषय नहीं है अतः यह लिखना समीचीन होगा कि उन्होंने अपने परम्परागत श्रमणमार्ग को गति प्रदान की । आज उपलब्ध साहित्य में भगवान् महावीर को प्रवक्ता मानकर गणधर श्री गौतम ने जैन वाङ्मय को अनेक लक्ष प्रमाण सत्साहित्य प्रदान किया है । उन्हींके गुणातिशय को भक्त कवियों ने अपनी लेखनी का विषय बनाकर स्वयं को 'तद्गुणलब्धये' धन्य किया है । महावीर जयन्ती के सदवसर पर उनकी गुणभक्तिके कीर्तन करने का यह प्रयास अत्यल्प ही समझना चाहिए क्योंकि इतना ही यथेष्ट नहीं है । तथापि 'अवसरपठिता वाणी'—के रूप में इसका उपयोग हो सकेगा ।

महावीर जयन्ती, मेरठ
११ अप्रैल १९६८

विद्यानन्द मुनि

जय महावीर !

' प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धे-
र्या देव त्वत्पदकमलयोः संगता भक्तिगङ्गा ।
चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः-
कल्माषं यद्भवति किमियं देव ! सन्देहभूमिः ॥ '

एकीभाव० १६

हे देवेश्वर ! आपके चरणकमलों से आश्लिष्ट यह भक्तिरूपिणी गंगा नयरूप हिमगिरि से उत्पन्न हुई है और इसका विस्तार अमृतसमुद्र पर्यन्त है। मेरा मन रुचिपूर्वक उसमें अवगाहन कर पापरूप कालिमा का प्रक्षालन कर चुका है। क्या यह (मेरी धारणा) सन्देहपूर्ण हो सकती है ?—नहीं।

तीर्थंकर महावीर

ग्रीष्म ऋतु का सूर्य जब अपनी प्रखर किरणों से जगत को सन्तप्त कर डालता है, पक्षियों का उन्मुक्त गगन-विहार बन्द हो जाता है, स्वच्छन्द-विहारी हिरणों की खुले मैदान की आमोदमयी क्रीड़ा रुक जाती है, असंख्य प्राणधारियों की तृषा बुझाने वाले सरोवर सूख जाते हैं, उनकी सरस मिट्टी भी नीरस हो जाती है, जनता का आवागमन अवरुद्ध हो जाना है, प्राणदायक वायु भी तप्त लू बनकर प्राणहारक बन जाती है, समस्त थलचर, नभचर प्राणी असहनीय गर्मी से 'त्राहि, त्राहि' करने लगते हैं।

तब जगत की उस व्याकुलता को देखकर प्रकृति करवट लेती है, आकाश में सरल काले बादल छा जाते हैं, संसार का सन्ताप मिटाने के लिए उनमें से शीतल जलबिन्दु टपकने लगते हैं। वाष्प (भाप) के रूप में पृथ्वी से लिए हुए जलऋण को आकाश सूद समेत चुकाने के लिए जलधारा की झड़ी बांध देता है। जिससे पृथ्वी न केवल अपनी प्यास बुझाती है, अपितु असंख्य व्यक्तियों की प्यास बुझाने के लिए अपना भंडार भी भर लेती है। जनता के आमोद-प्रमोद के लिए हरी घास की चादर भी बिछा देती है। समस्त जगत का सन्ताप दूर हो जाता है और सभी मनुष्य, पशु-पक्षी आनन्द की ध्वनि निकालने लगते हैं।

इसी तरह स्वार्थ की आड़ में जब दुराचार, पापमय अत्याचार संसार में फैल जाता है, दीन, हीन, बलहीन प्राणी निर्दयता की चक्की में पिसने लगते हैं, रक्षक जन ही उनके भक्षक बन जाते हैं, स्वार्थी दयाहीन मानव धर्म की धारा अधर्म की ओर मोड़ देता है। दीन असहाय प्राणियों की करुण पुकार जब कोई नहीं सुनता तब प्रकृति का करुणास्रोत बहने लगता है। वह ऐसा पराक्रमी साहसी वीर ला खड़ा करती है जो अत्याचारियों के अत्याचार को मिटा देता है, दीन-दुखी प्राणियों का संकट दूर करता है और जनता को सत्पथ-प्रदर्शन करता है।

आज से २६०० वर्ष पहले भारत की वसुन्धरा भी पाप-भार से कांप उठी थी । जनता जिन लोगों को अपना धर्म-गुरु पुरोहित मानती थी, धर्म का अवतार समझती थी, उन ही पुरोहितों का मुख रक्त-मांस का लोलुप बन गया था, अतः वे अपनी लोलुपता बुझाने के लिए स्वर्ग, राज्य, पुत्र, धन आदि का लोभ देकर भोली अबोध जनता से बड़े-बड़े यज्ञ, हवन कराते थे । यज्ञ में बकरे, घोड़े, हरिण, गाय आदि मूक निरपराध पशुओं का और कभी-कभी असहाय मनुष्यों का भी निर्दयता से कत्ल करके उनका मांस हवन करते थे । ज्ञानहीन जनता उन स्वार्थी पुरोहितों के वचन को ईश्वरवाणी समझ कर दयाहीन पाप को धर्म समझ बैठी थी और दीन, निर्बल, असहाय पशुओं की करुणाजनक आवाज सुनने वाला कोई न था ।

इस तरह मांसलोलुप पुरोहितों का स्वार्थ और जनता का अज्ञान उस पापकृत्य का संचालन कर रहा था । उस समय आवश्यकता थी जनसाधारण को ज्ञान का प्रकाश देने की और पथभ्रष्ट पुरोहितों का हृदय बदलने की, जिससे भारत का पापभार हल्का होता और पाप की दुर्गन्धि देश से दूर होती ।

उस समय धन-जनपूर्ण विशाल नगरी 'वैशाली' गणतन्त्र शासन की केन्द्र बनी हुई थी । उस गणतंत्र शासन के नायक महाराजा चेटक थे । चेटक की गुणवती सुन्दरी पुत्रियों में से एक का नाम था 'त्रिशला' । त्रिशला का पाणिग्रहण कुण्डलपुर (कुण्डग्राम) के शासक ज्ञातृवंशीय क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था । त्रिशला राजा सिद्धार्थ को बहुत प्यारी थी, अतः उसका अपर नाम 'प्रियकारिणी' भी प्रसिद्धि पा चुका था । त्रिशला सर्वगुणसम्पन्न आदर्श महिला थी ।

एक समय रात्रि को जब त्रिशला रानी राजभवन में आनन्द से सो रही थी, तब अन्तिम पहर में उसको १६ सुन्दर स्वप्न दिखाई दिए - हाथी, बैल, सिंह लक्ष्मी, दो मालाएँ, चन्द्रमा, सूर्य, दो मछलियां, जल से भरा हुआ सुवर्ण कलश तालाब, समुद्र, सिंहासन, देवों का विमान, धरणीन्द्र का भवन, रत्नों का ढेर और निर्धूम अग्नि । वह रात्रि आषाढ़ सुदी ६ की थी, उस समय हस्त नक्षत्र था ।

स्वपनों को देख कर त्रिशला रानी की नींद खुल गई । 'इन देखे हुए स्वप्नों का क्या फल प्रकट होगा', त्रिशला को इस बात के जानने का बहुत कौतूहल हुआ, अतः प्रभात-समय के कार्य समाप्त करके स्नान करने के अनंतर वह बड़ी उमंग के साथ राजा सिद्धार्थ के पास पहुँची । राजा सिद्धार्थ ने त्रिशला रानी को बड़े सम्मान और प्रेम के साथ अपनी बाईं ओर सिंहासन पर बिठाया और मुस्कराते हुए आने का कारण पूछा ।

त्रिशला रानी ने मीठी वाणी में प्रभात से कुछ समय पहले देखे हुए १६ स्वप्न सुनाए और उनसे प्रकट होने वाला फल राजा सिद्धार्थ से पूछा।

राजा सिद्धार्थ निमित्त शास्त्र के वेत्ता (जानकार) थे। उन्होंने त्रिशला रानी के देखे हुए स्वप्नों का फल जानकर बड़ी प्रसन्नता के साथ रानी से कहा कि तुम एक महान सौभाग्यशाली, बलवान, तेजस्वी, महान ज्ञानी, महान गुणी, यशस्वी, जगत-उद्धारक, मुक्तिगामी पुत्र की माता बनोगी। आज वह तुम्हारे उदर में अवतरित हुआ है, इसकी शुभ सूचना देने के लिए ये स्वप्न तुम्हें दिखाई दिए हैं।

अपने घर अत्यन्त सौभाग्यशाली जीव का आगमन जानकर राजा सिद्धार्थ और त्रिशला रानी को बहुत हर्ष हुआ। वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे, जब उन्हें अपने पुत्र देखने का अवसर मिलेगा।

उस अवसर पर देवों ने आकर राजा सिद्धार्थ के घर बहुत उत्सव किया। उसी दिन से ५६ कुमारिका देवियां त्रिशला रानी की सेवा करने के लिए नियुक्त हुईं। उन देवियों ने त्रिशला रानी की गर्भाधान के दिनों में बहुत अच्छी सेवा की, उसे किसी भी तरह शारीरिक तथा मानसिक कष्ट नही होने दिया। विविध प्रकार के मनोरञ्जन करके त्रिशला रानी का चित्त प्रसन्न रखा, उसे किसी तरह का खेद न होने दिया।

जन्म-उत्सव

नौ मास, सात दिन व्यतीत होने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिवस अर्यमा योग में त्रिशला रानी ने अनुपम तेजस्वी, सर्वांग सुन्दर पुत्र का प्रसव किया, जिस तरह पूर्व दिशा सूर्य का उदय करती है। उस समय समस्त जगत में शान्ति की लहर बिजली की तरह फैल गई। सदा नारकीय यन्त्रणाओं से दुखी जीवों को भी उस क्षण में शान्ति की सांस मिली। समस्त कुण्डलपुर में आनन्दभेरी बजने लगी। सारा नगर हर्ष में निमग्न हो गया। पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में राजा सिद्धार्थ ने बहुत दान किया और राज-उत्सव मनाया।

सौधर्म का इन्द्रासन स्वयं कम्पित हो उठा तब इन्द्र को अवधिज्ञान से ज्ञात हुआ कि कुण्डलपुर में अन्तिम तीर्थङ्कर का जन्म हुआ है। तत्काल वह समस्त देव-परिवार को साथ लेकर बड़े समारोह से कुण्डलपुर आया। वहां पर राजभवन में जाकर उसने बहुत मंगल-उत्सव किया।

कुण्डलपुर का अणु-अणु उस देव उत्सव से ध्वनित हो उठा। इन्द्र ने माता त्रिशला रानी की स्तुति करते हुए कहा कि—

"मातः! तू जगत्माता है, तेरा पुत्र विश्व का उद्धार करेगा। जगत का भ्रम, अज्ञान दूर करके विश्व का पथ-प्रदर्शक बनेगा। तू धन्य है! इस जगत में तेरे समान भाग्यशालिनी महिला और कोई नहीं है।"

इन्द्र ने राजा सिद्धार्थ का भी बहुत सम्मान किया। तदनन्तर इन्द्राणी उस नवजात बालक को प्रसूतिघर से बाहर ले आई, और माता के पास एक अन्य कृत्रिम बालक रख आई। इन्द्र उस बाल-तीर्थङ्कर को गोद में लेकर ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो, सुमेरु पर्वत पर गया। वहां सिंहासन पर बाल तीर्थङ्कर का अभिषेक किया, सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनाये और खूब हर्ष उत्सव किया। बालक के दाहिने पैर में सिंह का चिह्न था, अतः अन्तिम तीर्थङ्कर का चिह्न 'सिंह' रक्खा गया। जन्म-समय से ही राजा सिद्धार्थ का वैभव, यश, प्रताप, पराक्रम अधिक बढ़ने लगा था, इस कारण उस बालक का नाम 'वर्द्धमान' रक्खा गया।

अभिषेक-उत्सव करने के पश्चात् इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार होकर राजमार्ग से कुण्डलपुर आया। बाल-तीर्थङ्कर वर्द्धमान को इन्द्राणी पुनः माता त्रिशला के पास लिटा आई। तदनन्तर समस्त देव-परिवार अपने स्थान पर चला गया।

यह समय पूर्ववर्ती २३वें तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ के जन्म-काल से २७८ वर्ष पीछे का तथा ईसा से ६०० वर्ष पहले का था।

भगवान वर्द्धमान शुक्ल पक्ष की द्वितीय के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे। अपनी बाल-लीलाओं से माता-पिता, समस्त राज-परिवार को आनन्दित करने लगे। जन्म से ही उनके शरीर में अनेक अनुपम विशेषताएं थीं—जैसे कि उनका शरीर अनुपम सुन्दर था, शरीर के समस्त अंग—उपांग पूर्ण एवं ठीक थे, कोई भी अंग लेशमात्र भी हीन, अधिक, छोटा या बड़ा नहीं था, शरीर में सुगन्ध आती थी, पसीना न आता था, शरीर में महान् बल था, शरीर का रक्त दूध की तरह पवित्र था। असाधारण पाचन-शक्ति थी जिससे उन्हें मल-मूत्र नहीं होता था, वाणी बहुत मधुर थी, शंख, चक्र, कमल, यव, धनुष आदि १००८ शुभ लक्षण एवं चिह्न शरीर में थे। जन्म से ही महान ज्ञानी (अवधिज्ञानी) थे।

जिस तरह बाहरी पदार्थों को जानने के लिए उनकी ज्ञान-ज्योति असाधारण थी, उसी तरह उनमें आध्यात्मिक स्वानुभूति भी असाधारण थी, पूर्वभव से उदीयमान क्षायिक सम्यक्त्व (अविनाशी स्वात्मानुभव) उनको था। ऐसी अनेक अनुपम महिमामयी विशेषताओं के पुञ्ज वर्द्धमान तीर्थङ्कर थे।

क्रम-क्रम से बढ़ते हुए जब वर्द्धमान तीर्थङ्कर की आयु आठ वर्ष की हुई, तब उन्होंने बिना प्रेरणा के स्वयं आत्मशुद्धि की दिशा में पग बढ़ाते हुए हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों का आंशिक त्याग करके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और सीमित परिग्रह रूप पाँच अणुव्रत आचरण किये।

भगवान के नामान्तर

श्री वर्द्धमान तीर्थङ्कर के असाधारण ज्ञान की महिमा सुनकर संजय और विजय नामक दो चारण ऋद्धिधारक मुनि अपनी तत्व-विषयक कुछ शंकाओं का समाधान करने के लिए पास आए। किन्तु श्री वर्द्धमान तीर्थङ्कर का दर्शन करते ही उनकी मानसिक शंकाओं का समाधान स्वयं हो गया, उन्हें समाधान के लिए कुछ पूछना न पड़ा।

यह चमत्कार देखकर उन मुनियों ने भगवान वर्द्धमान का अपरनाम 'सन्मति' रख दिया।

एक दिन कुण्डलपुर में एक बड़ा हाथी मदोन्मत्त होकर गजशाला से बाहर निकल भागा, मार्ग में आने वाले स्त्री-पुरुषों को कुचलता हुआ, वस्तुओं को अस्त-व्यस्त करता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। उसको देखकर कुण्डलपुर की जनता भयभीत हो गई और प्राण बचाने के लिए यत्र-तत्र भागने लगी। नगर में बहुत भारी कोलाहल मच गया।

श्री वर्द्धमान अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, मदोन्मत्त हाथी उधर जा झपटा। हाथी का काल जैसा विकराल रूप देख, खेलने वाले बालक भयभीत होकर इधर-उधर भागे परन्तु वर्द्धमान ने निर्भय होकर कठोर शब्दों में हाथी को ललकारा। हाथी को वर्द्धमान की ललकार सिंह-गर्जना से भी अधिक प्रभावशाली प्रतीत हुई, अतः वह सहम कर खड़ा हो गया, भय से उसका मद सूख गया। तब वर्द्धमान इसके मस्तक पर जा चढ़े और अपनी वज्र मुष्टियां (मुक्कों) के प्रहार से उसे बिलकुल निर्मद कर दिया।

तब कुण्डलपुर की जनता ने राजकुमार वर्द्धमान की निर्भयता और वीरता की बहुत प्रशंसा

की और वर्द्धमान को, 'वीर' नाम से पुकारने लगी। इस तरह राजकुमार वर्द्धमान का तीसरा नाम 'वीर' प्रसिद्ध हो गया।

एक दिन संगम नामक एक देव महान भयानक विषधर सर्प का रूप धारण करके राजकुमार की निर्भीकता तथा शक्ति की परीक्षा करने आया। जहां पर वर्द्धमान कुमार अन्य किशोर बालकों के साथ एक वृक्ष के नीचे खेल रहे थे। वहां वह विकराल सर्प फुंकार मारता हुआ उस वृक्ष से लिपट गया। उसे देखकर सब लड़के बहुत भयभीत हुए, अपने-अपने प्राण बचाने लिए वे इधर-उधर भागने लगे, चीत्कार करने लगे कुछ भय से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। परन्तु वर्द्धमान कुमार सर्प को देखकर रंचमात्र भी न डरे, उन्होने निर्भयता से सर्प के साथ क्रीडा की और उसे दूर कर दिया।

तब राजकुमार वर्द्धमान की निर्भयता देखकर वह देव बहुत प्रसन्न हुआ और उसने प्रकट होकर वर्द्धमान तीर्थङ्कर की स्तुति की एवं उनका नाम 'महावीर' रख दिया।

विवाह का उपक्रम

राजकुमार वर्द्धमान जन्म से ही अनुपम सर्वांग सुन्दर थे. किन्तु जब उन्होंने किशोर वय समाप्त करके यौवन वय में पग रखा तब उनकी सुन्दरता उनके अंग-प्रत्यंग से और भी अधिक टपकने लगी। उनके असाधारण ज्ञान, बल, पराक्रम, तेज तथा यौवन की वार्ता प्रसिद्ध हो चुकी थी, अत: अनेक राजाओं की ओर से महावीर के साथ अपनी–अपनी राजकुमारी का पाणिग्रहण करने के लिए प्रस्ताव आने लगे।

कलिंग–नरेश राजा जितशत्रु की सुपुत्री राजकुमारी यशोदा उन सब राजकुमारियों में अतिशय अनिन्द्य सुन्दरी थी, एवं सर्व-गुण-सम्पन्न नवयुवती थी, अत: राजा सिद्धार्थ और त्रिशला ने वर्द्धमान कुमार का पाणिग्रहण उसी के साथ करने का निर्णय किया। तदनुसार वे राजकुमार का विवाह बहुत बड़े समारोह के साथ करने के लिए तैयारी करने लगे।

अपने विवाह की बात जब महावीर को ज्ञात हुई तो उन्होने उसे स्वीकार न किया। माता-पिता ने बहुत कुछ समझाया परन्तु वर्द्धमान कुमार विवाह–बन्धन में बंधने के लिए तत्पर न हुए।

यौवन के समय स्वभाव से नर नारियों में कामवासना प्रबल वेग से उदीयमान हो उठती है, उस कामवेग को रोकना साधारण मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर हो जाता है। मनुष्य अपने प्रबल

पराक्रम से महान बलवान वनराज सिंह को, भयानक विकराल गजराज को वश में कर लेता है, महान योद्धाओं की विशाल सेना पर विजय प्राप्त कर लेता है, किन्तु उसे कामदेव पर विजय पाना कठिन हो जाता है । संसार में पुरुष–स्त्री, पशु–पक्षी आदि समस्त जीव कामदेव के दास बने हुए हैं । इसी कारण नर-नारी का मिथुन (जोड़ा) काम-शान्ति के लिए जन्म भर विषय-वासना का कीड़ा बना रहता है । उस अदम्य कामवासना का लेशमात्र भी प्रभाव क्षत्रिय नवयुवा राजकुमार वर्द्धमान के हृदय पर न हुआ ।

राजकुमार महावीर ने कहा कि मैं जगत के जीवों को मिथ्या संसार-बन्धन से छुडाने आया हूँ फिर मैं स्वयं गृहस्थाश्रम के बन्धन में क्यों पड़ूं ? फैली हुई हिंसा, अज्ञान, भ्रम, दुराचार, अत्याचार का संसार से निराकरण करने का महान कार्य मेरे सामने है, अत: मैं काम का दास बनकर अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं कर सकता ।

अपने पुत्र का उच्च ध्येय सिद्ध करने के लिए ब्रह्मचर्य की अटल भावना जानकर त्रिशला रानी और राजा सिद्धार्थ चुप रह गए । उन्होंने सोचा कि वर्द्धमान हमारा पुत्र है, आयु में भी हमसे छोटा है किन्तु ज्ञान, आचार–विचार में हमसे बहुत बड़ा है । हित-अहित की वार्ता तथा कर्तव्य का निर्देश हम उसे क्या समझावें, वह सारे जगत को समझा सकता है । अत: वह जिस पुनीत पथ में आगे बढ़ना चाहता है हमें उसमें बाधा डालना उचित नहीं ।

ऐसा परामर्श करके उन्होंने कलिंग-नरेश जितशत्रु का राजकुमार वर्द्धमान के साथ यशोदा के विवाह का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और फिर कभी वर्द्धमान को विवाह करने के लिए संकेत भी नहीं किया ।

यौवन वय में दुर्द्धर्ष कामदेव पर विजय करने के उपलक्ष्य में जनता ने जगत-विजयी श्री वर्द्धमान कुमार का नाम 'अतिवीर' घोषित किया । इस तरह अन्तिम तीर्थङ्कर के वर्द्धमान, सन्मति, वीर, महावीर और अतिवीर, ये पांच नाम कुमार काल में ही विख्यात हुए ।

वर्द्धमान कुमार के पिता राजा सिद्धार्थ कुण्डलपुर के शासक थे । उनके नाना राजा चेटक वैशाली गणतंत्र के प्रमुख नायक थे, अनेक राजाओं के अधीश्वर थे, अत: राजकुमार वर्द्धमान को सब तरह के राज-सुख प्राप्त थे, कोई भी शारीरिक या मानसिक कष्ट उन्हें नहीं था । वे यदि चाहते तो पाणिग्रहण करके वैवाहिक काम-सुख का भी उपभोग कर सकते थे. कुण्डलपुर के राज-सिंहासन पर बैठकर राज-शासन भी कर सकते थे । परन्तु जिस तरह जल में रहता हुआ कमल भी जल से

अलिप्त रहता है उसी तरह राजकुमार वर्द्धमान सर्वसुख-सुविधा-सम्पन्न राजभवन में रहकर भी संसार की मोह-माया से अलिप्त रहे। अखंड बालब्रह्मचर्य से शोभायमान रहे।

इस तरह राजभवन में रहते हुए उन्होंने २८ वर्ष ७ मास १२ दिन का समय व्यतीत कर दिया।

संसार से विरक्ति

तदनन्तर वर्द्धमान कुमार को एक दिन अचानक अपने पूर्व भवों का स्मरण हो आया। वर्द्धमान को ज्ञात हुआ कि 'मैं पूर्व भवों में १६ वें स्वर्ग का इन्द्र था, वहां मैं २२ सागर तक दिव्य-भोग उपभोगों को भोगता रहा। उससे पूर्व भव में मैंने संयम धारण करके तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध किया था जिसका उदय इस भव में होने वाला है। इस समय संसार में धर्म के नाम पर पाप, अत्याचार फैलता जा रहा है। अतः पाप और अज्ञान को दूर करना परम आवश्यक है। जब तक मैं संयम ग्रहण न करूंगा, तब तक मैं आत्म-शुद्धि नहीं कर सकता और जब तक स्वयं शुद्ध-बुद्ध न बन जाऊं, तब तक विश्वकल्याण नहीं कर सकता। परिवार के बन्दीघर में रहकर में आत्म-साधना नहीं कर सकता, अतः मोह-ममता के कीचड़ से बाहर निकल कर मुझे आत्म-विकास करना चाहिए।

इस प्रकार वैराग्य-भावना वर्द्धमान कुमार के हृदय में जाग्रत हुई, उसी समय लोकान्तिक देव उनके सामने आ खड़े हुए और उन्होंने श्री वर्द्धमान को कहा कि आपने जो संसार की मोह-ममता से तथा विषय-भोगों से विरक्त होकर संयम धारण करने का विचार किया है वह बहुत हितकारी है। आप तप, त्याग, संयम के द्वारा ही अजर-अमर पद प्राप्त करेंगे, विश्वज्ञाता द्रष्टा बनेंगे और विश्व का उद्धार करेंगे।

लौकान्तिक देवों की वाणी सुनकर वर्द्धमान का वैराग्य और अधिक दृढ़ हो गया, अतः उन्होंने कुण्डलपुर का राजभवन छोड़कर एकान्त वन में आत्म-साधना करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

उसी समय इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ, तब इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से अन्तिम तीर्थङ्कर वर्द्धमान की वैराग्य-भावना का समाचार जाना। अतः वह देवगण के साथ तत्काल कुण्डलपुर राजभवन में आ पहुँचा। वहाँ उसने आकर बहुत हर्ष-उत्सव किया।

जब त्रिशला रानी को राजकुमार वर्द्धमान के संसार से विरक्त होने का समाचार ज्ञात हुआ तब वह पुत्र-स्नेह में विह्वल हो गई। उसके हृदय में विचार आया कि 'राजसुख में पला हुआ मेरा पुत्र वन-पर्वतों में नग्न रह कर सर्दी, गर्मी, वर्षा के कष्ट किस तरह सहन करेगा ? वन पर्वतों की कंटीली-कंकरीली भूमि पर अपने कोमल नंगे पैरों से कैसे चलेगा ? नंगे शिर धूप, ओस, वर्षा में कैसे रहेगा ? कहां कठोर तपश्चर्या, और कहां मेरे पुत्र का कोमल शरीर ?' ऐसा सोचते ही त्रिशला मूर्छित हो गई। परिवार के व्यक्तियों ने तथा दासियों ने शीतल उपचार से उसकी मूर्छा दूर की ! तब आए हुए देवों ने त्रिशला माता को समझाया कि माता ! तेरा पुत्र महान बलवान, धीर, वीर है, वज्रवृषभनाराच संहनन वाला है। अब वह उस सर्वोच्च पद को प्राप्त करने जा रहा है जिससे ऊँचा पद और कोई होता नहीं। तेरा पुत्र संसार से केवल आप अकेला ही पार न होगा बल्कि असंख्य जनता को भी संसार से पार कर देगा। वीर माता ! मोह का पर्दा अपने सामने से हटा दे, तू धन्य है, तुझे तरणतारण, विश्व-उद्धारक तीर्थंकर की जननी कह कर संसार अनंतकाल तक तेरा यश गान करेगा।

देवों का सम्बोधन पाकर त्रिशला माता प्रबुद्ध हुई, फिर भी होने वाले पुत्र-वियोग से तथा यह सोचकर कि—विषधर सर्प, भयानक सिंह, बाघ आदि अन्य जीवों से भरे वन, पर्वत, गुफाओं में मेरा पुत्र अकेला कैसे रहेगा ? उसका चित्त शोकाकुल रहा। वर्द्धमान कुमार ने अपनी माता को अपने परिवार को तथा प्रिय-परिजनों को शान्त आश्वासन देकर उनसे विदा ली।

कुण्डलपुर से बाहर तपोवन में भगवान वर्द्धमान को ले जाने के लिए 'चन्द्रप्रभा' नामक सुन्दर दिव्य पालकी लाई गई। उस पालकी में भगवान वर्द्धमान विराजमान हुए। जय-जयकार के हर्ष घोष के साथ पहले उस पालकी को भूमिचर मनुष्यों ने अपने कन्धे पर रक्खा और बड़े उल्लास के साथ कुछ दूर पालकी लेकर वे चले, फिर विद्याधरों ने पालकी अपने कन्धों पर उठाई, तदनन्तर इन्द्रों ने, देवों ने उस पालकी को अपने कन्धों पर रक्खा और आकाश मार्ग से षण्ड वन में पहुँचे।

वह वन हरा-भरा था, शुद्ध वायु का वहां निर्बाध संचार था। वहां किसी तरह का कोलाहल न था, न वहां पर मन को क्षुब्ध या विचलित करने वाला कोई अन्य पदार्थ था।

उस नीरव एकान्त, शान्त वन में पालकी लाकर रक्खी गई। भगवान वर्द्धमान उस पालकी से बड़े उत्साह के साथ बाहर आए। वहां एक स्वच्छ शिला थी, जिस पर इन्द्राणी के हाथों द्वारा रत्नचूर्ण का स्वस्तिक (सांथिया) बना हुआ था, भगवान उस पर जाकर बैठ गए। तदनन्तर

उन्होंने अपने शरीर के समस्त वस्त्र आभूषण उतार दिये। अपने कृत्रिम (बनावटी) वेश हटा कर प्राकृतिक स्वतन्त्र नग्न श्रमण वेश धारण किया। अपने हाथों से अपने शिर के बालों का पांच मुट्ठियों से लोंच किया जो कि शरीर से मोह त्याग का प्रतीक था। फिर 'नमः सिद्धेभ्या' कहते हुए सिद्धों को नमस्कार करके पंच महाव्रत आचरण किये और सर्व सावद्य का त्याग करके पद्मासन लगाकर आत्मध्यान (सामायिक) में बैठ गए।

इन्द्र ने भगवान के बालों को समुद्र में क्षेपण करने के लिए रत्न-मंजूषा में रख लिया। इस प्रकार अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर का मंगसिर बदी दशमी को हस्त तथा उत्तरा नक्षत्र के मध्यवर्ती समय में दीक्षा उत्सव करके समस्त देव, इन्द्र, मनुष्य, विद्याधर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

बाहरी विचारों से मन को रोक कर मौनभाव से अचल आसन में भगवान महावीर जब आत्मचिन्तन में निमग्न हुए, उसी समय उनके मनपर्यय ज्ञान का उदय हुआ, जो कि निकट भविष्य में केवल ज्ञान के प्रकट होने का सूचक था।

यह भगवान महावीर के आत्म अभ्युदय का प्रथम चिन्ह था।

तपस्या

महान कार्य सिद्ध करने के लिए महान परिश्रम करना पडता है। श्री वर्द्धमान तीर्थङ्कर को अनादि समय का कर्म-बन्धन, जिसने अनंत शक्तिशाली आत्मा को दीन, हीन, बलहीन बनाकर संसार के बन्दीघर (जेलखाने) में डाल रक्खा है, को नष्ट करने के लिए महा कठिन तपस्या करनी पड़ी। तदर्थ वे जब आत्मसाधना में निमग्न हो जाते थे, तब कई दिन तक एक ही आसन में अचल बैठे रहते थे, या खड़े रहते थे। कभी कभी एक मास तक लगातार आत्मध्यान करते रहते थे। उस समय भोजन पान बन्द रहता ही था किन्तु इसके साथ बाहरी वातावरण का भी अनुभव न हो पाता था। शीत ऋतु में पर्वत पर या नदी के तट पर अथवा किसी खुले मैदान में बैठे रहते, बहुत भारी ठंडक पड़ रही है परन्तु उन्हें उसका अनुभव ही न होता। ग्रीष्म ऋतु में पर्वत पर बैठे ध्यान कर रहे हैं, उस समय ऊपर से दोपहर की धूप, नीचे से गर्म पत्थर, चारों ओर से लू (गर्म हवा) नग्न शरीर को जला रही है किन्तु तपस्वी वर्द्धमान को उसका कुछ पता नहीं। वर्षा ऋतु में नग्न शरीर पर मूसलधार पानी गिर रहा है, तेज हवा चल रही है परन्तु महान योगी भगवान महावीर अचल आसन से आत्मचिन्तन में लगे हुए हैं।

वन में सिंह दहाड़ रहा है, हाथी चिंघाड़ रहा है, सर्प फुंकार रहे हैं परन्तु परम तपस्वी महावीर को इसका कुछ भान नहीं।

जब आत्म-ध्यान से निवृत हुए और शरीर को कुछ भोजन देने का विचार हुआ, तो निकट के गांव या नगर चले गए। वहां यदि विधि-अनुसार शुद्ध भोजन मिल गया तो निःस्पृह भावना से थोडा सा भोजन कर लिया और तपस्या करने वन पर्वत पर चले गए। कहीं दो दिन ठहरे. कहीं चार दिन, कहीं एक सप्ताह। फिर वहां से बिहार करके किसी अन्य स्थान को चले गए। सोना आवश्यक समझते, तब रात को पिछले पहर कुछ देर के लिए एक करवट से सो जाते। इस तरह आत्मसाधना के लिए अधिक से अधिक और शरीर की स्थिति के लिए थोड़े से थोड़ा समय लगाते थे।

ऐसी कठोर तपश्चर्या करते हुए देश-देशान्तर में भ्रमण करते रहे। नगर या गांव में केवल भोजन के लिए जाते थे, उसके सिवाय अपना शेष समय एकान्त स्थान वन, पर्वत, गुफा, नदी के किनारे, श्मशान, बाग आदि निर्जन स्थान में बिताते थे। वन के भयानक हिंसक पशु जब भगवान महावीर के निकट आते तो भगवान को देखते ही उनकी क्रूर हिंसक भावना शान्त हो जाती। अतः उनके निकट सिंह, हिरण, सर्प, न्यौला, बिल्ली, चूहा आदि जाति-विरोधी जीव भी द्वेष-वैर भावना छोड़कर प्रेम, शान्ति से क्रीड़ा किया करते थे।

चन्दना-उद्धार

इस प्रकार भ्रमण करते-करते भगवान महावीर एक बार वत्सदेश कौशाम्बी नगरी में भोजन के लिये आए। वहां पर एक सेठ के घर सती चन्दना तलघर (भोंहरे) में बन्दी (कैदी) के से दिन काट रही थी, बहुत विपत्ति में थी। उसने सुना कि भगवान महावीर कौशाम्बी में पधारे हैं। यह सुनते ही उसके हृदय में भावना हुई कि 'मैं भगवान को भोजन कराऊं।' किन्तु वह तलघर की जेल में पड़ी थी, बेड़ियां उसके पैरों में थीं, तपस्वी वर्द्धमान को भोजन करावे तो कैसे करावे? यह बात उसकी चिन्ता और दुःख का और अधिक कारण बन गई।

'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' यानी-जिसकी जैसी भावना होती है उसकी कार्य सिद्धि भी वैसी ही होती है। इस नीति के अनुसार संयोग से भगवान महावीर चन्दना के घर की ओर आ निकले। उसी समय सौभाग्य से चन्दना के पैरों की बेड़ियां अपने आप टूट गई और वह तलघर से बाहर निकल कर द्वार पर आ खड़ी हुई। जैसे ही भगवान उस द्वार पर आये कि चन्दना ने बड़े हर्ष और भक्तिभाव से उन्हें भोजन करने की प्रार्थना (पडगाहना) की। भगवान वहीं रुक गए, चन्दना ने नवधा भक्ति के साथ भगवान को अपना भोजन कराया।

उस समय शुभ कार्य-सम्पन्नता के सूचक रत्नवर्षा आदि पांच आश्चर्य हुए। चन्दना के सतीत्व की परीक्षा हुई, उसका महत्व जनता में प्रकट हुआ और वह बधनमुक्त हो गई।

चन्दना थी तो महाराज चेटक की राजपुत्री किन्तु बाग में झूलते समय एक विद्याधर द्वारा उसका अपहरण हुआ था। जब उसके चंगुल से छुटी तो संयोग से दुर्भाग्यवश उस सेठ के घर दासी के रूप में आ पड़ी। वह नवयुवती एवं अति सुन्दरी थी, अतः सेठानी ने इस शंका से कि कहीं यह मेरे पति की प्रेमपात्री न बन जावे, उस चन्दना को अपने मकान के तलघर (पृथ्वी के भीतर बने हुए मकान के निचले भाग) में बेड़ियाँ पहना कर रख दिया था और उसे रूखा-सूखा भोजन दिया करती थी। वह अभागी चन्दना सौभाग्य से भगवान महावीर का दर्शन कर सकी और उनको भोजन कराने का पुण्य अवसर उसे मिला एवं उसकी दासता की बेड़ियां कट गई, तब उसका सतीत्व सेठानी को भी ज्ञात हो गया, अतः सेठानी को बहुत पश्चाताप हुआ और उसने चन्दना से अपने अज्ञानवश किए हुए अपराध की क्षमा मांगी।

उपसर्ग

निःसंग वायु जिस प्रकार भ्रमण करती रहती है, एक ही स्थान पर नहीं रुकी रहती, इसी प्रकार असंग निग्रन्थ भगवान महावीर तपश्चरण करने के लिए भ्रमण करते रहे। भ्रमण करते हुए जब वे उज्जयिनी नगरी के निकट पहुंचे तब वहां नगर के बाहर अभिमुक्त नामक श्मशान को एकान्त शान्त प्रदेश जानकर, वहां आत्मध्यान करने ठहर गये। जब रात्रि का समय हुआ तो वहां पर 'स्थाणु' नामक रुद्र आया। उस रुद्र ने ध्यान-मग्न भगवान महावीर को देखा। देखते ही उसने उन्हें ध्यान से विचलित करने के लिये उपद्रव करने का विचार किया।

तदनुसार अपने सिद्ध विद्याबल से उस स्थाणुरुद्र ने अपना भयानक विकराल रूप बनाया और कानों के परदे फाड़ देने वाला अट्टहास किया, अपने मुख से अग्नि-ज्वाला निकाल कर ध्यानारूढ़ भगवान महावीर की ओर झपटा, भूत-प्रेतों के भयजनक नृत्य दिखलाये। सर्प, सिंह, हाथी आदि के भयानक शब्द किये। धूलि, अग्नि, वर्षा की। इत्यादि अनेक उपद्रव भगवान को भयभीत करने तथा आत्मध्यान से चलायमान करने के लिये किये, परन्तु उसे कुछ भी सफलता न मिली। न तो परम तपस्वी वर्द्धमान रंचमात्र भयभीत हुये और न उनका चित्त ध्यान से चलायमान हुआ, वे उसी प्रकार अपने अचल आसन से ठहरे रहे जिस तरह भयानक आंधी के चलते रहने पर भी पर्वत ज्यों का त्यों

खड़ा रहता है। अन्त में अपना घोर उपसर्ग कार्यकारी होता न देख, स्थाणु रुद्र वहां से चुपचाप चला गया।

कैवल्य-पद

जगत में कोई भी पदार्थ बहुमूल्य एवं आदरणीय बहुत परिश्रम तथा कष्ट सहन करने के पश्चात् बना करता है। गहरी खुदाई करने पर मिट्टी पत्थरों में मिला हुआ भद्दा रत्नपाषाण निकलता है, उसको छैनी, टांकी, हथौड़ों की मार सहनी पड़ती है, शाण की तीक्ष्ण रगड़ खानी पड़ती है, तब झिलमिलाता हुआ बहुमूल्य रत्न प्रगट होता है। अग्नि के भारी सन्ताप में बार-बार पिघल कर सोना शुद्ध चमकीला बनता है, तभी संसार उसका आदर करता है और पूर्ण मूल्य देकर उत्कण्ठा से खरीदता है।

आत्मा अनन्त वैभव का पुञ्ज है, उसके समान अमूल्य पदार्थ संसार में एक भी नहीं है, रत्न की तरह उसका वैभव भी अनादिकालीन कर्म के मैल में छिपा हुआ है उस गहन कर्ममल में छिपे हुए वैभव को पूर्ण शुद्ध प्रकट करने के लिये महान परिश्रम करना पड़ता है, और महान कष्ट सहन करना पड़ता है, तब यह आत्मा परम-शुद्ध विश्ववन्द्य परमात्मा बना करता है।

भगवान महावीर को भी आत्म-शुद्धि के लिए कठोर तपस्या करनी पड़ी। तपश्चरण करते हुए उनकी पूर्व-संचित कर्मराशि निर्जीर्ण (निर्जरा) हो रही थी, कर्म-आगमन (आस्रव) तथा बन्ध कम होता जा रहा था। यानी—आत्मा का कर्ममल कटता जा रहा था या घटता जा रहा था। अतः आत्मा का प्रच्छन्न तेज क्रमशः उदीयमान हो रहा था, आत्मा कर्मभार से हलका हो रहा था, मुक्ति निकट आती जा रही थी।

विहार करते-करते तपस्वी योगी भगवान महावीर विहार प्रान्तीय जृम्भिका गांव के निकट बहने वाली ऋजुकूला नदी के तट पर आये। वहां आकर उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया। स्वात्म-चिन्तन में निमग्न हो जाने पर उन्हें सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान प्राप्त हुआ। तदनन्तर चरित्र मोहनीय कर्म की शेष २१ प्रकृतियों का क्षय करने के लिये क्षपक श्रेणी का आद्य स्थान आठवाँ गुणस्थान हुआ। तदर्थ प्रथम शुक्लध्यान (पृथकत्त्ववितर्क-विचार) हुआ।

जैसे ऊंचे भवन पर शीघ्र चढ़ने के लिये सीढ़ी (जीना-नसैनी) उपयोगी होती है, उसी प्रकार संसार-भ्रमण एवं कर्मबन्धन के मूल कारण दुर्द्धर्ष मोहनीय कर्म का शीघ्र क्षय करने के लिये क्षपक श्रेणी उपयोगी होती है। कर्मक्षय के योग्य आत्म-परिणामों का प्रतिक्षण असंख्यात गुणा

उन्नत होना ही क्षपक—श्रेणी है। क्षपक श्रेणी आठवें, नौवें, दसवें, और बाहरवें गुणस्थान में होती है। इन गुणस्थानों में चरित्रमोहनीय की शेष २१ प्रकृतियों की शक्ति का क्रमशः ह्रास होता जाता है, पूर्ण क्षय १२वें गुणस्थान में हो जाता है।

उस समय आत्मा के समस्त क्रोध, मान, काम, लोभ, माया, द्वेष, आदि कषाय (कलुषित-विकृत भाव) समूल नष्ट हो जाते हैं, आत्मा पूर्ण शुद्ध वीतराग, इच्छाविहीन हो जाता है। तदनन्तर दूसरा शुक्लध्यान (एकत्व वितर्क अविचार) होता है जिससे ज्ञान दर्शन के आवरक तथा बलहीन-कारक (ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय) कर्म क्षय हो जाते हैं तब आत्मा में पूर्णज्ञान, पूर्णदर्शन और पूर्णबल का विकास हो जाता है जिनको दूसरे शब्दों में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तबल कहते हैं। इन गुणों के पूर्ण विकसित हो जाने से आत्मा सर्वज्ञाता-द्रष्टा बन जाता है। यह आत्मा का १३वां गुणस्थान कहलाता है।

क्षपक श्रेणी के गुणस्थानों का समय अंतर्मुहूर्त है, उसी में योगी सर्वज्ञ हो जाता है। वीतराग सर्वज्ञ हो जाना ही आत्मा का जीवनन्मुक्त परमात्मा (अर्हन्त) हो जाना है। आत्म-उन्नति या आत्म-शुद्धि का इतना बड़ा कार्य होने में इतना थोड़ा समय लगता है। किन्तु यह महान कार्य होता तभी है जबकि आत्मा तपश्चरण के द्वारा शुक्लध्यान के योग्य बन चुका हो।

तेहरवें गुणस्थान में तीसरा शुक्लध्यान (सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती) होता है।

आत्म—उन्नति या आत्म—शुद्धि अथवा वीतराग, सर्वज्ञ, अर्हन्त, जीवन्मुक्त परमात्मा बनने का यही विधी-विधान भगवान महावीर को भी करना पड़ा। १२ वर्ष, ५ मास, १५ दिवस तक तपश्चर्या करने के अनन्तर उन्होंने प्रथम शुक्लध्यान की योग्यता प्राप्त की। तत्पश्चात् पहले लिखे अनुसार उन्होंने मोहनीय, ज्ञानवरण, दर्शनावरण और अन्तराय, चार घाति कर्मों का क्षय अन्तर्मूहूर्त में करके सर्वज्ञ वीतराग या अर्हन्त जीवन्मुक्त परमात्मा पद प्राप्त किया। अतः वे पूर्णशुद्ध एवं त्रिकाल-ज्ञाता त्रिलोकज्ञ बन गए।

यह शुभ काल वैशाख शुक्ला दशमी के अपराह्न (तिसरे पहर का प्रारम्भ) का समय था, उस समय शरीर की छाया पैरों तक पड़ती थी।

भगवान महावीर ने अपने पूर्व तीसरे भव में जिसके लिए तपस्या की थी और इस भव में जिस कार्य के लिए राज—सुख एवं घर—परिवार का परित्याग किया था वह उत्तम कार्य सम्पन्न हो

गया। यह जहां भगवान महावीर का परम सौभाग्य था, वहीं समस्त जगत का, विशेष करके भारत का भी महान सौभाग्य था कि एक सत्य ज्ञाता, सत्पथ–प्रदर्शक एवं अनुपम प्रभावशाली वक्ता उसको प्राप्त हुआ। भगवान महावीर तीर्थङ्कर प्रकृति के उदय का भी सुवर्ण अवसर आ गया।

समवशरण

इस विश्व-हित-कारिणी घटना की शुभ सूचना कुछ विशेष चिह्नों द्वारा सौधर्म-इन्द्र को प्राप्त हुई। भगवान महावीर के सर्वज्ञाता द्रष्टा अर्हन्त वन जाने की वार्ता जानकर इन्द्र को बहुत हर्ष हुआ। उसने भगवान महावीर का विश्वकल्याणकारी उपदेश सर्वसाधारण जनता तक पहुंचाने के लिये अपने कोषाध्यक्ष (खजानची) कुबेर को एक सुन्दर विशाल व्याख्यान-सभा-मंडप (समवशरण) बनाने का आदेश दिया।

कुबेर ने इन्द्र की आज्ञानुसार अपने दिव्य साधनों से अति शीघ्र एक बहुत सुन्दर दर्शनीय विशाल सभा-मंडप बनाया। जिसके तीन कोट और चार द्वार थे। द्वारों पर सुन्दर मानस्तम्भ थे। बीच में ऊँची तीन कठनी वाली सुन्दर वेदिना (गन्धकुटी) बनी थी। गन्धकुटी पर रत्नजड़ित सुवर्ण सिंहासन था जिसमें कमल का फूल बना हुआ था। गन्धकुटी के चारों ओर १२ विशाल कक्ष (कमरे) थे, जिनमें देव, देवी, मनुष्य, स्त्री, साधु, साध्वी, पशु, पक्षी आदि उपदेश सुनने वाले भद्र प्राणियों के बैठने की व्यवस्था थी। इसके सिवाय आगन्तुक जनता की सुविधा के लिये अन्य मनोहर स्थान और साधन उस समवशरण में बनाये गये थे। मध्य-वर्तिनी उच्च गन्धकुटी के सिंहासन पर भगवान महावीर के विराजमान होने की व्यवस्था थी, जिससे उनका उपदेश समस्त श्रोताओं (सुनने वालों) को अच्छी तरह सुनाई पड़े।

उसी समय देवों का दुन्दुभी बाजा वहां पर बजने लगा, जिसकी मधुर आकर्षक ध्वनि बहुत दूर पहुंचती थी। उस ध्वनि को सुनकर भगवान महावीर के समवशरण की वार्ता कानोंकान दूर तक फैल गई। जिससे भगवान महावीर का दिव्य-उपदेश सुनने की उत्कण्ठा से दूर-दूर की जनता चलकर ऋजुकूला नदी के तट पर बने समवशरण में पहुंची।

इन्द्र भी विशाल देव-परिवार के साथ समवशरण में पहुंचा। उसने वहां भगवान के कैवल्य पद का महान-उत्सव किया, भगवान का दर्शन, वन्दना, पूजन बड़े भक्तिभाव और हर्ष के साथ किया। तदनन्तर समवशरण की सुव्यवस्था की।

समवशरण में महान प्रकाश था जिससे वहां रात और दिन का भेद न जान पड़ता था, वहां

पर परम-शान्ति थी। वहां आये हुये प्रत्येक प्राणी के हृदय में कोई क्षोभ, भय, व्याकुलता न थी, न कोई किसी को शारीरिक कष्ट था। भगवान महावीर के परम अहिंसामय आत्मा का इतना प्रभाव उस सभा-मंडप में था कि किसी भी प्राणी के हृदय में द्वेष, वैर, क्रोध, हिंसा की भावना जाग्रत न होती थी। अतः सिंह, गाय, चीता, हरिण, बिल्ली, चूहा, सर्प, न्यौला आदि जाति-विरोधी जीव शान्त निर्भय होकर साथ-साथ बैठते थे।

दिव्य-उपदेश

समवशरण में असंख्य भव्य जीव भगवान महावीर का दिव्य-उपदेश सुनने के लिये बड़ी उत्कण्ठा और उत्साह के साथ आये और यथास्थान बैठ कर भगवान की दिव्यवाणी की प्रतीक्षा करने लगे। चकोर पक्षी को चन्द्रिका (चांदनी) बहुत प्रिय लगती है, वह चांदनी रात्रि को चन्द्रमा की ओर अपलक दृष्टि से देखा करता है, इसी तरह समवशरण की जनता भगवान महावीर के मुख की ओर देख रही थी। भगवान का एक मुख चारों ओर दिखाई दे रहा था। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में चातक पक्षी अपनी प्यास आकाश से बरसे हुए जल-बिन्दुओं को अपने मुख में लेकर बुझाता है, वह और कोई जल नहीं पीता, अतः बादलों की ओर अपनी चोंच किये वर्षा की प्रतीक्षा करता रहता है, इसी तरह समस्त जनता के कान भगवान का उपदेश सुनने के लिए आतुर थे।

वहां अनेक मनुष्यों, देवों तथा विद्वानों के हृदय में विचारधारा बह रही थी कि 'भगवान अब तक तो सर्वदा मौन रहे। तपस्या के दिनों में उन्होंने किसी से एक शब्द भी न कहा परन्तु अब तो उनको केवलज्ञान हो गया है, अब उनके तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय होगा। पूर्ववर्ती अन्य तीर्थङ्करों के समान उनका भी विश्व-उद्धारक, सर्वहितमय पावन उपदेश अवश्य होगा।'

परन्तु सारा दिन बीत गया और रात्रि भी समाप्त हो गई, भगवान के मुख से एक अक्षर भी प्रगट न हुआ। श्रोताओं ने समझा, अभी कुछ विलम्ब है। वहां अनेक व्यक्ति नये आये, अनेक पहले आये हुए उठकर चले गये, अनेक वहीं ठहरे रहे। दूसरा दिन हुआ, दूसरी रात हुई किन्तु भगवान की वाणी प्रकट न हुई। इसी तरह कई दिवस व्यतीत हुए किन्तु भगवान का उपदेश वहां पर न हुआ। जनता का चित्त कुछ म्लान हो गया। कतिपय दिन पश्चात् भगवान का वहां से अन्य स्थान के लिये आकाश-विहार भी हो गया।

भगवान के विहार करते ही कुबेर ने वह बना हुआ दिव्य समवशरण स्वल्प समय में ही

हटा लिया, वहाँ पर फिर पहले जैसा साफ मैदान हो गया। विहार के अनन्तर भगवान जहाँ पर ठहरे, वहां पर कुबेर ने पहले-जैसा भव्य सभा-मंडप (समवशरण) थोड़े समय में बना दिया। वहां पर भी असंख्य श्रोता (उपदेश सुनने वाले) एकत्र हुए, परन्तु अनेक दिन-रात व्यतीत होने पर भी वहां भी उपदेश न हुआ। वहां से भी भगवान का विहार हो गया। वहां का समवशरण विघट गया, भगवान जहां पर ठहरे, वहां नवीन समवशरण बना। परन्तु अनेक दिन बीत जाने पर भगवान का उपदेश वहां पर भी न हुआ।

भगवान के इस मौन पर समस्त जनता चकित थी परन्तु इस मौन का कारण कोई भी न जान सका। सबकी धारणा यही थी, भगवान महावीर तीर्थङ्कर हैं, मूक केवली नहीं हैं, अतः उनका उपदेश तो अवश्य होगा, कब प्रारम्भ होगा, यह ज्ञात नहीं।

विहार करते-करते भगवान राजगृही के निकट विपुल पर्वत पर आये वहां पर भी सुन्दर विशाल समवशरण बना और यथासमय असंख्य श्रोता भी वहां एकत्र हुए, परन्तु यहां पर भी भगवान महावीर का वही मौन।

भगवान के इस दीर्घकालीन मौन के मूल कारण पर समवशरण के व्यवस्थापक सौधर्म इन्द्र ने गम्भीरता से विचार किया, तब अवधिज्ञान से उसे ज्ञात हुआ कि 'समवशरण में अब तक ऐसा महान प्रतिभाशाली विद्वान उपस्थित नहीं हुआ जो कि भगवान के गूढ़-गम्भीर दिव्य-उपदेश को सुनकर उसे अपने हृदय में धारण कर सके और उसको प्रकरणबद्ध करके श्रोताओं की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) का यथार्थ समाधान कर सके, भगवान का उपदेश सबको समझा सके।' इस प्रकार का गणधर बनने योग्य विद्वान ऋषि समवशरण में न होने के कारण भगवान का मौन-भंग नहीं हुआ।

तदनन्तर उसने अवधिज्ञान से यह भी जाना कि इस समय इन्द्रभूति गौतम भगवान का गणधर बनने योग्य विद्वान है, किन्तु वह भगवान का श्रद्धालु नहीं है, अतत्वश्रद्धानी है। हां यदि किसी प्रकार वह भगवान महावीर के सम्पर्क में आ जावे तो भगवान का श्रद्धालु भक्त बनकर गण-धर बन सकता है।

ऐसा विचार कर इन्द्र ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और वह वेद-वेदांग के ज्ञाता, महान प्रतिभाशाली विद्वान, ५०० विद्वान शिष्यों के गुरु इन्द्रभूति गौतम के पास पहुँचा और इन्द्र-भूति गौतम से बोला कि—

मेरे गुरु भगवान महावीर ने, जो कि सर्वज्ञ हैं, मुझे निम्नलिखित श्लोक सिखाया है, उसका अर्थ भी मुझे बताया था, किन्तु मैं भूल गया हूँ। आप बहुत बड़े विद्वान हैं। कृपा करके उस श्लोक का अर्थ मुझे समझा दीजिये। श्लोक यह है—

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं, नवपदसहितं,
जीवषट्कायलेश्याः।
पञ्चान्येचास्तिकाया,
व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदाः॥
इत्येतन्मोक्षमूलं,
त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान्,
यः स वै शुद्धदृष्टिः॥

इन्द्रभूति उस वृद्ध ब्राह्मण के मुख से श्लोक सुनकर विचार में पड़ गया कि छह द्रव्य, नौ पदार्थ, छह काय जीव, छह लेश्या, पाँच आस्तिकाय आदि का मैंने आज तक नाम भी नहीं सुना, वेद-वेदांग का महान ज्ञाता तो मैं हूं परन्तु आर्हत दर्शन का ज्ञान मुझे नही है; तब इसे श्लोक की इन बातों को मैं कैसे समझाऊँ? किन्तु इसको अपनी अनभिज्ञता बतलाने में मेरा उपहासजनक अपमान है अतः इसके गुरु के साथ शास्त्रार्थ करके अपनी मानमर्यादा रखना उचित है। ऐसा विचार कर इन्द्रभूति गौतम से उस वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, 'चल तेरे गुरु के साथ बात करूंगा।'

कपटरूपधारी इन्द्र यही तो चाहता था, अतः वह मन ही मन अपनी सफलता जानकर बहुत प्रसन्न हुआ और गौतम को झटपट अपने साथ समवशरण में ले आया। समवशरण के निकट पहुंचते ही जैसे ही गौतम ने मानस्तम्भ को देखा कि तत्काल उसके हृदय से ज्ञानमद स्वयं दूर हो गया और अभिमानी के बजाय वह नम्र विनयशील बन गया।

समवशरण में घुसकर जैसे ही उसने भगवान महावीर का दर्शन किया कि तत्काल उसके हृदय में श्रद्धा जाग उठी। गौतम आया तो था भगवान से शास्त्रार्थ करने, किन्तु उनके निकट पहुच कर बन गया उनका श्रद्धालु शिष्य। भगवान महावीर की वीतरागता से वह इतना प्रभावित हुआ कि अपना समस्त परिग्रह त्याग कर वही महाव्रती साधु बन गया। साधु बनते ही इन्द्रभूति गौतम को मनपर्यय ज्ञान हो गया।

इस घटना के होते ही भगवान महावीर का मौन भंग हुआ और मेघ गर्जना के समान गम्भीर ध्वनि में उनका उपदेश प्रारम्भ हो गया।

भगवान के मौन भंग का यह शुभ दिवस श्रावण वदी प्रतिपदा था। इस तरह केवलज्ञान हो जाने पर ६६ दिन तक (बैशाख सुदी दशमी से ६ दिन बैशाख के, ३० दिन जेठ और ३० आसाढ़ के) भगवान का उपदेश नहीं हुआ। यह दिन 'वीर शासन-उदय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जनता ने इस को वर्ष का प्रारम्भ दिन माना। तब से कई शताब्दी तक भारतीय जनता शुभ कार्य का प्रारम्भ इस दिन किया करती थी तथा वर्ष का प्रारम्भ भी श्रावण वदी प्रतिपदा के दिन मानती रही।

भगवान का उपदेश सर्वसाधारण जनता की भाषा में होता था। प्रत्येक श्रोता उसे सुगमता से समझ लेता था। उस उपदेश में समस्त तात्विक बातों का विवेचन था, समस्त जगत का विवरण था, इतिहास का कथन था, तथा आत्मा के हितकर, अहितकर, संसार भ्रमण, मुक्ति, कर्मबन्धन, कर्ममोचन, धर्म, अधर्म, गृहस्थधर्म, मुनिधर्म, जीव परिणमन, अजीव परिणमन की विशद व्याख्या थी, 'पशुओं को मार कर यज्ञ करना महान पाप है, उसे धर्म समझना भूल है।' इस विषय को भगवान महावीर ने अच्छे प्रभावशाली ढंग से समझाया।

वीर बाणी का प्रभाव

विख्यात ब्राह्मण विद्वान इन्द्रभूति गौतम जब भगवान वीर प्रभु का अग्रगण्य शिष्य बन गया, तब जनता पर तथा ब्राह्मण विद्वानों पर इसका क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा। इन्द्रभूति गौतम के समान ही उसके दो अन्य महान विद्वान भ्राता अग्निभूति और वायुभूति भी अपनी शिष्य मंडली सहित भगवान महावीर का उपदेश श्रवण करने समवशरण में आये और वे भी भगवान महावीर के विनीत शिष्य साधु बनकर गणधर बन गये।

जब श्री वीर प्रभु का मर्मस्पर्शी उपदेश जनता ने सुना तो धर्म का सुन्दर सत्य स्वरूप उसे ज्ञात हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि पशुयज्ञ के विरोध में एक व्यापक लहर फैल गई। यज्ञ कराने वाले पुरोहितों के तथा यज्ञ करने वाले यजमानों के हृदय में उल्लेखनीय परिवर्तन आया और वे पशुयज्ञ के हिंसा-कृत्य से घृणा करने लगे।

राजगृही का नरेश श्रेणिक (बिम्बसार), जो कि पहले बौद्ध धर्म का उपासक था, भगवान

महावीर का उपदेश सुनकर उनका परम भक्त अनुयायी बन गया।

इस तरह श्री वीर प्रभु की वाणी प्रारम्भ से ही अच्छी प्रभावशालिनी प्रमाणित हुई।

कुछ दिन पश्चात् भगवान वहां से विहार कर गये। वे जहां पर ठहरे, वहां पर उनका नवीन समवशरण (व्याख्यान सभा मंडप) बना। वहां पर भी उनका कई दिन प्रभावशाली धर्म उपदेश हुआ। तदनन्तर वहां से भी वे विहार कर गये।

इस तरह अंग, बंग, कलिंग, वत्स, कौशल, पांचाल, गुर्जर, मगध, कुरु, अवन्ती, शूरसेन आदि अनेक प्रान्तों तथा देशों में भगवान महावीर का विहार हुआ और वहां पर महान धर्म-प्रचार हुआ।

उस धर्म प्रचार से अहिंसा का प्रभावशाली प्रसार हुआ, पशुयज्ञ होने तो सर्वत्र बन्द हो गये। हिंसाकृत्य और मांस-भक्षण से भी जनता घृणा करने लगी। हिंसक लोग भगवान महावीर का उपदेश सुनकर स्वयं अहिंसक बन गये।

भगवान महावीर का जहां भी विहार हुआ, वहां के शासक, मंत्री, सेनापति, पुरोहित, विद्वान तथा अन्य साधारण जन उनके अनुयायी भक्त बनते गये। जिस तरह सूर्य के उदय से अन्धकार हटता जाता है उसी तरह भगवान महावीर के उपदेश से अज्ञान भ्रम, अधर्म, अन्याय, अत्याचार, हिंसाकृत्य आदि पापाचार साधारण जनक्षेत्र से दूर होता गया। निरपराध मूक पशुजगत को संरक्षण मिला।

भगवान महावीर के संघ में ११ गणधर, ७०० केवली, ५०० मनपर्ययज्ञानी, १३०० अवधिज्ञानी, नौ सौ विक्रिया ऋद्धि-धारक, चार सौ अनुत्तरवादी, छत्तीस हजार साध्वी, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएं थीं।

श्री वीर प्रभु ने २९ वर्ष, ५ मास, २० दिन तक देश-विदेश में महान धर्म प्रचार किया।

अन्त में वे विहार बन्द करके पावापुर में सरोवर पर ठहर गए। वहां उन्होंने योगनिरोध करके अन्तिम गुणस्थान प्राप्त किया और शेष अघाति कर्मों का क्षय करके कार्तिक बदी अमावस्या के ब्राह्ममुहूर्त में (सूर्योदय से कुछ पहले) संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त की।

निर्वाण उत्सव

दीपावली

भगवान महावीर का पावापुरी में जब निर्वाण हुआ उस समय रात्रि का अन्तिम अन्धकार था। जैसे ही विभिन्न चिह्नों से इन्द्र को भगवान महावीर के मुक्ति-गमन की सूचना मिली, त्यों ही तत्काल देव-परिवार के साथ वह पावापुरी आया। वहां पर उसने असंख्य दीपक जलाकर महान प्रकाश किया। आगन्तुक देवों ने उच्च मधुर स्वर से भगवान का बार-बार जयघोष किया जिससे पावापुरी तथा निकटवर्ती स्त्री-पुरुषों को भगवान के निर्वाण की सूचना मिल गई। अतः समस्त स्त्री-पुरुष दीपक जलाकर उस स्थान पर आए। इस तरह वहां असंख्य दीप प्रज्वलित हो गए। मनुष्यों ने तथा देवों ने भगवान के निर्वाण का महान उत्सव किया।

तदनन्तर भगवान का शरीर कपूर, चन्दन की चिता के ऊपर देवों ने रक्खा। अग्निकुमार देवों ने जैसे ही नमस्कार किया कि उनके मुकुट से अग्निज्वाला प्रगट हो गई, उससे सुगन्धित द्रव्यों के साथ भगवान का परम-औदारिक शरीर भस्म हो गया। उस भस्म को सबने अपने-अपने मस्तक मे लगाया।

उसी दिन गौतम गणधर के केवलज्ञान का उदय हुआ।

तब से समस्त भारत में भगवान महावीर के स्मरण में प्रतिवर्ष कार्तिक वदी अमावस्या को 'दीपावली' उत्सव प्रचलित हुआ। यह दिवस बहुत शुभ माना गया है। इस दिन भगवान महावीर की पूजन होती है, निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है, मुक्तिलक्ष्मी की पूजा होती है और रात्रि के समय दीपक जलाकर हर्ष-सूचक प्रकाश किया जाता है।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण के स्मारक रुप वीर निर्वाण संवत् प्रारम्भ हुआ है, जो कि प्रचलित सभी संवतों से प्राचीन (२४९४) है।

वीर प्रभु के नाम पर नगर

भगवान महावीर के स्मरण में बंगाल-बिहार में अनेक नगरों के नाम भगवान के नामानुरूप रक्खे गये। भगवान के जन्म-नाम पर 'वर्द्धमान' (अपभ्रंश रूप में वर्दमान), वीर नाम पर 'वीरभूमि'

(अपभ्रंश रूप 'वीरभूम') भगवान के चरण चिह्न 'सिंह' के ऊपर 'सिंहभूमि' (अपभ्रंश 'सिंहभूम') नगर का नाम अब तक प्रचलित है ।

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध

भगवान महावीर के समय में अन्य कई धर्मप्रचारक हुए हैं, उनमें से कपिलवस्तु के क्षत्रिय राजा शुद्धोदन के पुत्र 'गौतम बुद्ध' अधिक विख्यात हैं । राजकुमार गौतम तरुण अवस्था में संसार से विरक्त होकर सबसे पहले भगवान महावीर के पूर्ववर्ती २३वें तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा से जैनसाधु पिहितास्रव से साधुदीक्षा ली। जैनसाधु के अनुसार समस्त वस्त्र त्यागकर वे नग्न हुए और केशलोंच तथा हाथों में भोजन करना आदि जैनसाधु का आचरण कुछ दिन तक करते रहे । जब उन्हें वह जैनसाधु की चर्या कठिन प्रतीत हुई, तब उन्होंने लाल वस्त्र पहन कर अपना अलग पन्थ चलाया जिसका नाम 'बौद्ध धर्म' पड़ा ।

महात्मा बुद्ध ने भी अहिंसा का प्रचार किया, किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होंने अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने के उद्देश्य से अपने शिष्यों को कड़ाई के साथ निरामिषभोजी नहीं बनाया । अतएव बौद्ध गृहस्थ और बौद्ध साधु हिंसा से उत्पन्न माँस खाने लगे तथा वे अब भी खाते हैं ।

महात्मा बुद्ध ने अपने से पूर्ववर्ती जो २३ सुगतों (बुद्धों) का होना बतलाया है वे सुगत भगवान ऋषभनाथ से लेकर भगवान पार्श्वनाथ तक २३ तीर्थङ्कर ही प्रतीत होते हैं ।

महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों के सामने बौद्ध ग्रन्थ मज्झिमनिकाय के उल्लेख अनुसार भगवान महावीर को 'सर्वज्ञाता सर्वद्रष्टा' स्वीकार किया है ।

न्यायमर्यादा तथा धर्ममर्यादा को स्थिर रखने के लिए भगवान राम को रावण से भयानक शस्त्र-युद्ध करना पड़ा, श्री कृष्ण को कंस तथा शिशुपाल का वध करना पड़ा, महाभारत युद्ध पाण्डवों की ओर से लड़ना पड़ा किन्तु भगवान महावीर को हिंसा-निरोध के लिए शस्त्र न उठाने पड़े, उन्होंने अपने उपदेश से ही हिंसकों को अहिंसक बना दिया ।

श्रीमहावीराष्टकस्तोत्रम्

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचित:
समं भान्ति ध्रौव्यव्ययजनिलसन्तोऽन्तरहिता: ।
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥

अताम्रं यच्चक्षु:कमलयुगलं स्पन्दरहितं
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि ।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥

नमन्नाकेन्द्रालीमुकुटमणिभाजाल-जटिलं
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम् ।
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥३॥

यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह
क्षणादासीत् स्वर्गी गुणगणसमृद्ध: सुखनिधि: ।
लभन्ते सद्भक्ता: शिवसुखसमाजं किमु तदा
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनय: ।
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोऽद्भुतगति–
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥५॥

यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति ।
इदानीमप्येषा बुधजनमरालै: परिचिता
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभट:
कुमारावस्थायामपि निजबलाद् येन विजित: ।
स्फुरन्नित्यानन्दप्रशमपदराज्याय स जिनो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥७॥

महामोहातङ्कप्रशमनपराकस्मिकभिषङ्
निरापेक्षो बन्धुर्विदितमहिमा मङ्गलकर: ।
शरण्य: साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥८॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम् ।
य: पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥९॥

" कल्लु करगुवदु । उग्रफणि सोल्लुवदु
वणमरं पल्लविपदु । एरलि सिलुकुवुदु
पशु मोहिपदु । निल्लदे अलुवएले
पसुले संतसव नेंदुवदु । मुगिलोसदु
मले गरेवदु । सल्ललिते संगीतरसक्के
यन्नं निन्नते माड ऽ नंत जिनेन्द्र । ॥

—महाकवि श्रीजन्न (कन्नड़ भाषा)

अर्थ

अहो ! महाप्रभावी है संगीत ! इसकी श्रुतिमधुर ध्वनि मनुष्यप्रिय ही नहीं है अपितु इससे कहीं अधिक व्यापक है । संगीत से पत्थर मृदु हो जाता है, महान् विषधर वशीभूत हो फण डुलाने लगता है, सूखते हुए वृक्ष-वनस्पति हरित-पल्लवित हो जाते हैं, मृग मुग्ध होकर बन्दी बन जाते हैं, मृग ही क्यों, समस्त पशुजगत् मोहित हो जाता है—(गजों और रथवाह्य वृषभादि पशुओं को बजती हुई घण्टियों से गति मिलती है और श्रान्ति नहीं प्रतीत होती । सेना की परेड के साथ वाद्य होता है जो उनकी श्रान्ति हरता है तथा समन्वित गति में सहायक होता है ।) निरन्तर रुदन करते बालक को सान्त्वना मिलती है, बादल वृष्टि करने के लिए परवश हो जाते हैं । शोभन और ललित संगीत का अद्भुत प्रभाव है । हे जिनेन्द्र ! संगीतात्मक प्रार्थना क्या मुझे तन्मयता प्रदान कर आप सदृश नहीं बना सकती ?

भज जिनचतुर्विंशति नाम
जे भजे ते उतरि भवदधि लयो शिवसुख धाम ।।
ऋषभ, अजित, संभवस्वामी, अभिनन्दन अभिराम ।
सुमति, पदम, सुपास, चन्दा, पुष्पदन्त प्रणाम ।।
शीत, श्रेयान्, वासुपूजा, विमल, नन्त, सुठाम ।
धर्म, शान्ति जु कुन्थु, अरहा, मल्लि राखे माम ।।
मुनिसुव्रत, नमि, नेमिनाथा, पास, सन्मति स्वाम ।
राखि निश्चय जपो 'बुधजन' पुरे सबके काम ।।

—जैनपदसंग्रह १०६

अर्थ

हे भव्यात्मन् ! चौबीसों भगवान के नाम का भजन कर। जिन्होंने भजन किया उन्होंने संसारसमुद्र से पार उतर कर शिवसुख प्रदान करनेवाले स्थान को प्राप्त किया। उन चौबीसों जिनेन्द्र प्रभुओं की नामावली इस प्रकार है- भगवान ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवस्वामी, अनिन्द्य-सुन्दर अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल अनन्त, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमि, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और सन्मति-महावीर स्वामी। हे बुधजन ! श्रद्धानपूर्वक इनका जप करो। ये सबकी कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं।

अब मोहे तार लेहु महावीर !
सिद्धार्थनंदन, जगवन्दन, पापनिकन्दन, धीर !
ज्ञानी, ध्यानी, दानी जानी बानी गहन-गम्भीर ।
मोक्षके कारण, दोष-निवारण, रोष-विदारण वीर ।
समता सूरत, ग्रानन्द पूरत, चूरत ग्रापद पीर ।
बालयती, दृढव्रती, समकिती, दुखदावानल-नीर ।।
गुण ग्रनन्त भगवन्त ग्रन्त नहीं शशि कपूर हिम हीर ।
'द्यानत' एकहू गुण हम पावें, दूर करें भव-भीर ।।

—हिन्दी पदसंग्रह १७१ (डॉ० कासलीवाल)

ग्रर्थ

हे महावीर ! ग्रब मेरा भवसागर से उद्धार कर दीजिए । हे सिद्धार्थ के नन्दन! जगद्वन्द्य पापनाशक ! हे धीर ! ग्रब मुझे पार लगा दीजिए । हे भगवन् ! ग्राप केवलज्ञानी हैं, निर्विकल्प ग्रात्मध्यानी हैं, ग्रनुपम दानी हैं । ग्रापकी दिव्यध्वनि गहन ग्रौर गम्भीर है । ग्राप मोक्ष के लिए कारण हैं, दोषों के निवारण करने वाले हैं, रोष के विदारण में वीर हैं । ग्रापकी वीतरागमुद्रा समता से (समभाव से) शोभायमान है जिसका दर्शन ग्रानन्दों को पूरनेवाला तथा ग्रापदाग्रों ग्रौर पीडाग्रों को नष्ट करनेवाला है । ग्राप बालयति हैं, व्रतों में दृढ़ हैं, समकित योगके धारक हैं, तथा दु:खरूप दावानलको शमन करनेवाले नीर हैं । हे भगवन् ! ग्रापमें ग्रनन्त गुण हैं, उनका ग्रन्त नहीं है । ग्रापके गुण चन्द्रमा, कर्पूर, तुषार ग्रौर रत्नराशिवत् निर्मल हैं । 'द्यानतराय' का विश्वास है कि ग्रापके गुणसमुद्र में से हमें एक गुणबिन्दु भी प्राप्त हो जाए तो संसारबाधा को दूर करने में समर्थ हो जाएं ।

सब मिल देखो हेली म्हारी हे ! त्रिशलाबाल बदनरसाल ।
आये जुत समवसरन कृपाल, विचरत अभय व्यालमराल ।
फलित भई सकल तरुमाल ।।
नैन न हाल, भृकुटि न चाल, नैन विदारें विभ्रमजाल ।
छवि लखि होत सन्त निहाल ।।
वन्दन काज साज समाज, संग लिये स्वजन पुरजन आज ।।
श्रेणिक चलत है नरपाल ।।
यों कहि मोदयुत पुरबाल, लखन चलीं चरम जिनपाल ।
"दौलत" नमत कर धर भाल ।।

—दौलतविलास, ५०

अर्थ

हे सखियो ! सब मिलकर दर्शनीय त्रिशला माता के पुत्रको देखो । वह कृपामय समवसरण सहित पधारे हैं और सर्प-व्याघ्रादि में अभय विचरण करते हैं। उनके शुभागमन से सम्पूर्ण वृक्षावलियां फल-पुष्पवती हो उठी हैं । उनके नयन स्थिर हैं, भ्रुकुटियां अविचल हैं और दृष्टि भ्रम-जाल को विदीर्ण करनेवाली है । ऐसी छविका अवलोकन कर साधुहृदय धन्य हो उठे हैं । भगवान की वन्दना करने के लिए समाज को सजाकर, आत्मीय जनों तथा नगर-निवासियों को संग लेकर राजा श्रेणिक बिम्बसार चले जा रहे हैं । इस प्रकार अनेक भांति से आनंद—उल्लास व्यक्त करती हुई नगर की कुलवधुएं अन्तिम तीर्थंकर के दर्शनों को चली जा रही हैं । 'दौलत' अंजलिबद्ध हो मस्तक नवाते हुए भगवान महावीर को नमस्कार निवेदन करता है ।

दर्शन के देखत भूख टरी ।
समोसरन महावीर विराजे तीन छत्र सिर ऊपर राजे ।
भामण्डल से रवि-शशि लाजे चंवर ढरत जैसे मेघझरी ॥
सुर नर मुनिजन बैठे सारे द्वादशसभा सुगणधर ग्यारे ।
सुनत धरम भये हरष अपारे बानी प्रभुजी थारी प्रीतभरी ॥
मुनिवरधर्म और गृहवासी दोनों रीत जिनेश प्रकाशी ।
सुनत कटी ममता की फांसी तृष्णा डायन आप मरी ॥
तुम दाता तुम ब्रह्म महेशा तुम हि धनन्तर बैद जिनेशा ।
काटो 'नयनानन्द' कलेशा तुम ईश्वर तुम राम हरि ॥

—नयनानन्द ह० लि० पृष्ठ ८ पद १७

अर्थ

भगवान वीतराग का दर्शन करने से सम्पूर्ण लौकिक क्षुधा—तृष्णाओं का अन्त हो गया। भगवान महावीर समवसरण में विराजमान हैं उनके मस्तक पर तीन छत्र शोभायमान हैं। भामण्डल की प्रभा सूर्य और चन्द्रमा को लज्जित कर रही है। डुलाये जा रहे चंवर मेघों की झड़ी जैसे प्रतीत हो रहे हैं। उस द्वादशकक्ष रमणीय सभा में देव, मनुष्य, मुनिजन तथा ग्यारह गणधर विराजमान हैं भगवान ने दिव्यध्वनि में धर्मोपदेश दिया उस धर्मप्रवचन को सुनकर अपार हर्ष हुआ। हे भगवन् ! आप की वाणी प्रीति भरी हुई है। जिनेश्वर ने मुनिधर्म और गृहस्थधर्म दोनों की रीति प्रकाशित की है। भगवान का उपदेश श्रवण कर मोह-ममता का बन्धन कट गया है, तृष्णारूपिणी डायन अपने आप मर गई है। हे परमात्मन् ! तुम्हीं दाता हो, तुम्हीं ब्रह्म हो, महेश हो, धन्वन्तरि वैद्य हो हे जिनेश्वर ! तुम्हीं ईश्वर, राम और हरि हो। भक्तों का क्लेश काटनेवाले तुम्हीं हो।

वर्धमान ! जस वर्धमान अच्युत विमान गति ।
नगर कुण्ड पुर धार सार सिद्धारथ भूपति ॥
रानी प्रियकारनी बनी कंचन छवि काया ।
आयु बहत्तर बरस, जोग खरगासन ध्याया ॥
तुम सात हाथ मृगनाथ पति
तेमनं अब लों धरम जर
सिर नाय नमो जुग जोरि कर ॥

—धर्म विलास पृ० ५१

अर्थ

हे वर्धमान प्रभो ! आपका यश निरन्तर वर्धमान है। आप अच्युत विमान को त्याग कर कुण्डलपुर नगर में पधारे। उस नगर के राजा सिद्धार्थ आपके पिता थे और रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) आपकी माता थी। आपके शरीर की आभा स्वर्ण जैसी थी। आपकी आयु बहत्तर वर्ष की थी। आपने दीक्षा लेकर खड़गासन से ध्यान लगाया था। आपकी अवगाहना सात हाथ की थी, सिंह आपका लांछन (चिह्न) है। आप के द्वारा प्ररूपित धर्म ही अबतक जगत में परमधर्म का मूल है। प्रभो ! बद्धांजलि होकर मैं आपके चरणों में सिर झुकाता हूँ।

महावीर महावीर जीवाजीव छीर - नीर
पाप ताप - नीर - तीर धरम की धर है ॥
आस्रव स्रवन नाहि बंधत न बंध माहि,
निज्जरी निर्जरत संवर के घर है ॥
तेरमो है गुनथान सोहत सुकल ध्यान,
प्रगटो अनंत ज्ञान मुकत के बर है ॥
सूरज तपत करै जड़ता कूं चंद धरै,
'द्यानत' भजन जन कोऊ दोष न रहै ॥

—धर्म विलास पृ० ५१ (हस्तलिखित मेरठ)

अर्थ

भगवान महावीर ने जीव और अजीव का भेद दूध और पानी के समान अलग अलग करके बता दिया है। उनका धर्म ही संसार के पाप और ताप रूपी सरिता से पार होने के लिये नाव के समान है तथा धर्मकी धरा है। (जीव और अजीव का भेद-विज्ञान होने के पश्चात्) कर्मों का आस्रव और बन्ध नहीं होता और जो कर्म सत्ता में हैं उनकी निर्जरा हो जाती है तथा नवीन कर्मों का संवर (निरोध) हो जाता है। ऐसे भेद विज्ञानी मुनि ही क्षपक श्रेणी में आरोहण करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और संसार से पार होकर मुक्ति प्राप्त करते हैं। सूर्य में जिस प्रकार ताप है और चन्द्रमा में शीतलता है, इसी प्रकार, 'द्यानत' कवि कहते हैं कि भगवान महावीर के भजन (स्मरण) करके मनुष्य सब दोषों से मुक्त हो जाता है, उसमें समताका आविर्भाव होने से उष्ण और शीत उभय द्वन्द्व दशाओंका तिरोभाव हो जाता है।

ध्यान प्रधान लहा महावीर नें,
सेनिक आनन्द भेरि बजाई।
मत्त मतंग तुरंत बड़े रथ,
'द्यानत' सोभत इन्द्र सवाई।
बांभन छत्रिय वेस जु सूद,
सुकामनि भीर घटा उम ड़ाई।
कान परी न सुनै कोऊ बात,
सु धूरके पूर कला रवि छाई॥

—धर्म विलास पृ० ४०

अर्थ

जब भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ तो राजा श्रेणिक ने चारों ओर आनन्द-भेरी बजवाई। नाना प्रकार के मत्त हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों पर बैठकर भगवान के दर्शनों के लिये आये हुए श्रेणिक नृपति की शोभा इन्द्र से अधिक थी। भगवान के दर्शनों के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, स्त्री-पुरुषों की अपार भीड़ एकत्रित हुई। कविवर 'द्यानतराय' कहते हैं कि उस भीड के कारण इतना शोरगुल हो रहा था कि कोई बात किसी के कानों में सुनाई नहीं पड़ती थी। वाहनो के पदक्षेपसे इतना धूलका पूर उठा कि सूर्यकी आभा उससे आच्छादित हो गई।

वीर महावीर जिनेसुर,
गौतम मान घने सिर नाए।
बालक चाल में सील धरे,
सुर चन्दना देखत बंध खुलाए।
मेंढक हीन किये अमरे,
सुरदान सबं मनबांछित पाए।
'द्यानत' आजलों ताहो को मारग,
सागर है सुख होत सवाए।।

—धर्म विलास पृ० ३१

अर्थ

भगवान महावीर जिनेश्वर के निकट महा विद्वान गौतम ब्राह्मण ने भक्तिपूर्वक भगवान के चरणों में अपना सिर नवाया। भगवान ने अपनी बाल्यावस्था में ही व्रत धारण कर लिये। भगवान के दर्शन मात्र से बन्धनों में पड़ी हुई चन्दनबाला के बन्धन खुल गये। मेंढक जैसे हीन प्राणी भी (भगवान की भक्ति से) देव बन गये और सबकी मनोकामना पूर्ण होगई। 'द्यानत' कवि कहते हैं कि उन्हीं भगवान महावीर का शासन आज तक चल रहा है। उनका धर्म-शासन तो एक सागर के समान है। उसे धारण करने की इच्छा मात्र से प्राणी के सुखों में वृद्धि होने लगती है।

जग में प्रभु पूजा सुखदाई ।।
दादुर कमल पांखुरी लेकर प्रभु-पूजा को जाई ।
श्रेणिक नृप गज के पग से दबि प्राण तजे सुरथाई ।।१।।
द्विजपुत्री ने गिर कैलासे पूजा आन रचाई ।
लिंग छेद देव-पद लीनों अन्त मोक्ष-पद पाई ।।२।।
समोसरण विपुलाचल ऊपर आये त्रिभुवनराई ।
श्रेणिक वसु विधि पूजा कीनी तीर्थंकर गोत्र बंधाई ।।३।।
'द्यानत' नरभव सुफल जगत में जिनपूजा रुचि आई ।
देवलोक ताके घर आंगन अनुक्रम शिवपुर जाई ।।४।।

—जैनार्णव पृ० १६२

अर्थ

संसार में भगवान की पूजा सुख देने वाली है । एक मेंढक कमल की पंखुड़ी लेकर भगवान महावीर की पूजा करने की भावना से चला । किन्तु मार्ग में राजा श्रेणिक (बिम्बसार) के हाथी के पैरे के नीचे दब गया और मर कर वह स्वर्ग में देव हुआ । एक द्विज कन्या ने कैलाश पर्वत पर जाकर भगवान की पूजा की । उसके प्रभाव से उसने स्त्री-लिंग छेदकर स्वर्ग में देव-पद प्राप्त किया और अन्त में उसने मोक्ष प्राप्त किया । एक बार त्रिलोकीनाथ भगवान महावीर का समवशरण विपुलाचल पर आया । वहां जाकर राजा श्रेणिक ने बड़े भक्तिभाव से भगवान की अष्ट द्रव्यों से पूजा की । परिणामतः उन्हो ने तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध कर लिया । कविवर 'द्यानतराय' कहते हैं कि जिन मनुष्यों के मन में भगवान की पूजा की रुचि उत्पन्न हो जाती है, उनका मनुष्य-जन्म सार्थक हो जाता है । उनकें लिये स्वर्ग लोक घर–आंगन जैसा हो जाता है अर्थात् उन्हें देव-पद प्राप्त करना कठिन नहीं होता, बल्कि वे क्रमशः मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं ।

पावापुर भावि बंदो जाय।
परमपूज्य महावीर गये शिव,
गौतम ऋषि केवल गुन पाय ॥१॥
सो दिन अब लगि सब जग माने,
दीवाली सम मंगल काय ॥२॥
कातिक मावस-निश तिस जागे,
'द्यानत' अदभुत पुन्य उपाय ॥३॥

—जैनपदसंग्रह पं० २५६

अर्थ

हे भव्यजनो ! पावापुर चलो; पावापुर की तीर्थ-यात्रा कर वहां भगवान श्री महावीर स्वामी की वन्दना करो। पावापुरी में भगवान महावीर ने मोक्ष पद प्राप्त किया और वहीं पर गण-धर श्री गौतम ऋषि ने केवलज्ञान प्राप्त किया। उस पवित्र दिन का स्मरण आज तक सारे संसार में किया जाता है। वह दीपावली के रूप में मंगल पर्व माना जाता है। 'द्यानतराय' कहते हैं कि कार्तिकी अमावस्या की रात्रि भगवान की मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति की तिथि है। उसमें अद्भुत पुण्य (धर्म) का उपाय सिद्ध होता है।

बंदौं जिनदेव ! सदा चरण-कमल तेरे ।
जा प्रसाद सकल कर्म छूटत अघ मेरे ॥
ऋषभ अजित संभव अभिनंदन मेरे ।
सुमति पद्म श्री सुपार्श्व चन्दा प्रभु मेरे ॥
पुष्पदन्त शीतल श्रेयांस गुण घनेरे ।
वासपूज्य विमल अनन्त धर्म जग उजेरे ॥
शांति कुन्थ अरह मल्ल मुनिसुव्रत मेरे ।
नमि नेमि पार्श्वनाथ महावीर मेरे ॥
लेत नाम अष्ट याम छूटत भव फेरे ।
जन्म पाय 'जादीराय' चरनन के चेरे ॥

—प्रभाती संग्रह पृ० १८३

अर्थ

हे प्रभु जिनेन्द्रदेव! मैं आपके चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जिनके प्रसाद से मेरे सम्पूर्ण कर्म और पाप छूट जायेंगे। भगवान ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ और चन्द्र प्रभु मेरे प्रभु हैं। पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ इनमें अनन्त गुण हैं। वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, और धर्मनाथ ये संसार में ज्ञान का प्रकाश करने वाले हैं। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर भगवान मेरे हैं। इन चोबीसों भगवान का नाम आठों पहर (निरन्तर) लेने से संसार में जन्म–मरण का चक्र समाप्त हो जाता है। कवि 'जादौराम' कहते हैं कि मैं तो जन्म से ही इन तीर्थंकर भगवान के चरणों का दास हूँ।

भोर उठ तेरो मुख देखों जिनदेवा ।
देवन के नाथ इन्द्र ते तो पूजें मुनिवृन्द
ताके पति गनधर करें तेरी सेवा ॥
अतिशय कारज वसु प्रतिहारज
अनन्त चतुष्टय ठाकुर ! एवा ॥
'द्यानत' तारो इतनो विचारो
इसको एक हमारो सहेवा ॥

—जैनपदसं० ४-२७७

अर्थ

हे जिनदेव ! मैं प्रात:काल उठते ही आपका मंगलमुख देखता हूँ । भगवान ! देवताओं का स्वामी इन्द्र मुनिराजों की सेवा करता है और उन मुनियों के पति गणधर देव आपकी सेवा में अर्पित हैं। आप अतिशय युक्त हैं, अष्ट प्रातिहार्य सहित हैं, एवं अनन्त चतुष्टय आपको प्राप्त हैं ।

हे ठाकुर ! (स्वामिन्!) द्यानत का उद्धार कीजिये । इतना विचार कीजिये कि इस दीन का आश्रय केवल आप ही हैं ।

'जिनवानी जान सुजान रे !
लाग रही चिर तें विभावता ताको कर अवसान रे !
द्रव्य,क्षेत्र अरु काल, भावकी कथनी को पहचान रे !
जाहि पिछाने स्वपरभेद सब, जाने परत निदान रे !
पूरब जिन जानी तिनहीने भानी संसृत- बान रे !
अब जानें अरु जानेंगे जे, ते पावें शिवथान रे !
कह 'तुष-मास' मुनी शिवभूती, पायो केवलज्ञान रे !
यों लखि 'दौलत' सतत करो भवि चिद्वचनामृतपान रे।'

—जैनपद संग्रह, प्र० भाग ८०

अर्थ

हे सुजान ! भव्यात्मन् ! जिनवाणी का ज्ञान प्राप्त करो। अनन्तकाल से तुम्हारे साथ स्वभाव (आत्मप्रकृति)-विरुद्ध विभाव-परिणति (परभावों में आसक्ति) लग रही है उसकी समाप्ति करो। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के विषय में आगमदर्शित चेतना की पहचान करो अर्थात् द्रव्यकालादिबोधपूर्वक आत्मबोध प्राप्त करो। उनको पहचानने से निश्चय ही स्वपर भेद का परिज्ञान होता है पूर्वकाल में जिन्होंने (अथवा जिन-परमेष्ठियो ने) इन्हें समझा, जाना उन्होंने ही संसारपरिभ्रमण के परम्परागतक्रम का नाश किया– मुक्ति लाभ लिया। अब वर्तमान में जो इसे जानते हैं तथा भविष्य में जो जानेंगे वे शिवस्थान (मोक्ष) को पाएंगे। मुनिश्री शिवभूति ने, तुष-माष भिन्न हैं, मात्र इतना भेदज्ञान प्राप्तकर केवलज्ञान पा लिया। कवि 'दौलतराम जी' कहते हैं कि यह सब देख-सुनकर, विवेक बुद्धि से धारण कर निरन्तर भगवान् जिनेन्द्र-प्रोक्त चिद्वचनामृत का (चैतन्यबोधकारक दिव्य वाणी का) पान करो।"

" घड़ि घड़ि, पल पल, छिन छिन, निशिदिन
प्रभुजी का सुमिरन कर ले रे!
प्रभु सुमिरे ते पाप कटत है,
जन्म-मरण-दुख हर ले रे!
मन, वच, काय लगाय चरन चित,
ज्ञान हिये बिच धर ले रे!
'दौलतराम' धर्मनौका चढ़ि,
भवसागर ते तिर ले रे! "

—दौलत जैनपदसंग्रह ६४

अर्थ

हे जीवात्मन्! तू प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक पल, प्रतिक्षण— अहोरात्र परम प्रभु जिनेन्द्र देव का स्मरण कर। प्रभु के स्मरण करने से पापों का क्षय होता है (और पापक्षय से मोक्ष मिलता है) अतः जन्म-मरण रूप अनादि दुःख को (भगवद्भजन से) दूर कर ले। मन, वचन और काय को मनःपूति के साथ अर्हन्त देव के चरणों में तन्मय कर दे। यह ज्ञान हृदय में विराजमान कर। हे भव्य! धर्म रूपी नौका पर आरूढ होकर भवसमुद्र को पार कर ले।

बीरा ! थारी बान बुरी परी रे !
बीरा म्हो ! मानत नाही ।
विषय विनोद महा बुरे रे ! दुखदाता सब रंग ।
तू हठ से ऐसे रमे रे ! जैसे दीवे रमें पतंग ।।
ए सुख हैं दिन दोयके रे! फिर दुख की संतान ।
करे कुहारी लेयके रे ! मति मारे पग जान ।।
तनक न संकट सहि सके रे ! छिनमें होय अधीर ।
नरक विपति बऊ दोहली रे ! तू कैसे भर है बीर ।।
सब सुपना हो जायगा रे ! करनी रहेगी निधान ।
'भूधर' फिर पछतायगो रे ! अब ही समझ अयान ।।

अर्थ

हे वीर ! मेरे प्रियबन्धु ! तुममें बुरी आदतें पड़ गई हैं । तुम (समझाने पर भी) मानते नहीं हो । विषयों के साथ क्रीड़ा-विनोद बहुत बुरा है, क्योंकि ये सभी सांसारिक रंग (विलास) दुःख प्रदाता हैं । ये सुख भी शाश्वत नहीं हैं प्रत्युत कुछ दिनों के लिए हैं । फिर तो दुःखों की परम्परा लग जाने वाली है । हे सखे ! तू अपने हाथ में कुल्हाड़ी लेकर, जानबूझकर पैरों में मत मार । अरे ! तू अल्प संकट भी सहन नहीं कर पाता, क्षण में धैर्य खो देता है । तुमने नरक और विपदाओं का बहुत दोहन किया है अब उन्हें कैसे पूर सकेगा । संसार के ये सारे विलास स्वप्न हो जाएंगे । कवि 'भूधरदास' कहते हैं कि तब तुम्हें पश्चात्ताप होगा अतः अज्ञानी पुरुष ! अब ही समझ ले ।

" चरणन से जी! म्यारी लागी लगन ।
हाथ कमण्डल, करमें पीछी, मिले गुरु निस्तारन तरन ॥
वनमें बसें, कसें इन्द्रिनिकूं, धारें करुणारूप नगन ॥
हित मित वचन धरम उपदेशें मानो बर्षत मेघ भरन ॥
'नैनानन्द' नमत है तिनकूं, जो नित आतमध्यान मगन ॥ "

— जैनभजनसंग्रह ४३

अर्थ

तारण-तरण परमगुरु के चरणों से हमारी लगन लगी हुई है । उनके हाथों में कमण्डलु और मयूरपिच्छि है । गुरुदेव वनवासी हैं इन्द्रियनिरोध करने वाले हैं तथा करुणामय दिगम्बर मुद्राधारी हैं । वे हितकारी उपदेश को सार शब्दों में कहते हैं मानों, भरे हुए मेघ बरस रहे हों । 'नयनानन्द' उनके चरणों में 'नमोऽस्तु' करता है, नित्य ही जो आत्मध्यान में मग्न हैं ।

" जिनवाणी गंगा जन्म-मरण-हरणी ।
जिन-उरपद्मकुण्डमेंतें निकसी मुखही में गिर गिरणी ।।
गौतममुख हेम - कुलपर्वततल तहँ बिचमें ढरणी ।।
स्याद्वाद बोऊ तट प्रतिवृढ तत्त्वनीर झरणी ।।
सप्तभंगमय चलत तरंगिणी तिनतें फैल चलणी ।।
'बुधमहाचन्द' श्रवण-अंजलितें पीग्रो मोक्ष-करणी ।। "

—महाचन्द जैन भजनावली २६

अर्थ

भगवान् जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि—गंगा जन्म-मरणादि-क्लेशों का अपहरण करने में निपुण है। वह जिन प्रभु के हृदयरूप कमलसरोवर से प्रादुर्भूत हुई है एवं उन्हींके मुख से लोकधरातल पर अवतीर्ण है। गणधर श्री गौतम ऋषि का मुख हिमाद्रि कुलप्रर्वत है जहां वह क्षरित हुई है। स्याद्वाद (स्यादस्ति स्यान्नास्तिरूप उभयात्मक अनेकान्तवाद) उसके अत्यन्त दृढ़ उभय तट हैं। वह आत्मतत्त्व-नीर को प्रवाहित करने वाली है। सप्तभंगात्मक नयोंके अनेक कल्लोलों से उद्वेलित वह फैलकर—विस्तार के साथ चलती है। 'बुध महाचन्द' कहते हैं कि उस मोक्षकारिणी दिव्यजिनभारतीरूपिणी गंगा का अपनी श्रवणपुटरूप अंजलियों से पान करो।

शब्दार्थ—स्यादवाद— एक वस्तुमें नाना धर्म होते हैं। उन्हें वस्तु के पार्श्वचित्र कह सकते हैं। प्रत्येक पार्श्वका चित्र पृथक् होता है, हो सकता है। वह अपेक्षात्मक है। स्यात्, कथंचित्—शब्दों द्वारा उसके आपेक्षिक अवयवों का बोध सुगम, सहज हो जाता है तथा विचार-विमर्श की व्यापकता स्वतः अनुभूत होती है। तब आलोच्य वस्तु उतनी ही नहीं रह जाती जितनी हम जानते होते हैं अथवा एक कालावच्छेदेन कह पाते हैं। वस्तु की इस बहुमुख अनेकान्तधर्मिताकी व्याख्यानशैलीका पारिभाषिक नाम 'स्याद्वाद' है। हिमालय की ओर मुख करके उसके चारों ओर अवस्थित मनुष्य उसे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशाओं में बताएंगे। उनका यह निर्वचन उनकी स्वस्थिति के अनुसार समीचीन है। क्योंकि हिमालय तत्पूर्वस्थित से पश्चिम है तो वही तत्पश्चिमस्थसे पूर्व भी है इससे व्यतिरिक्त भिन्न भिन्न कोणों के निरीक्षण पर ही वस्तु की समग्रता दृष्टिपथ में आ पाती है। अन्यथा वस्तु अपूर्ण तथा खण्डात्मक ही दिखायी देने से गोलार्धवत अशेष परिलक्षित नहीं हो पाती।

" अमृत झर झुरि झुरि आवे जिनवानी ।
द्वादशांग बादल ह्वै उमड़े ज्ञान अमृत रसखानी ।
स्याद्वाद बिजुरी अति चमके शुभ पदार्थ प्रगटानी ।।
दिव्यध्वनि गम्भीर गरज है श्रवण सुनत सुखदानी ।।
भव्य जीवमन भूमि मनोहर पाप कूड़कर हानी ।
धर्म बीज तहां ऊगत नीको मुक्ति महाफल ठानी ।।
ऐसो अमृत झर अति शीतल मिथ्या तपत बुझानी ।
बुध'महाचन्द्र' इसी झर भीतर मग्न सफल सोइजानी ।। "

— महाचन्द जैन भजनावली २०

अर्थ

भगवान् जिनेन्द्र की वाणी अमृतनिर्झर (पीयूषस्त्रोत) के साथ झर झर वरस रही है। द्वादशांगरूप बादल रस की खान ज्ञानरूप अमृतपूर लेकर उमड़ रहे हैं। शुभ पदार्थों को व्यक्त करने में निपुण स्याद्वाद-विद्यूत् अतिशय के साथ चमक रही है। दिव्यध्वनि ही वह गम्भीर गर्जन है जिसे सुनकर श्रोत्रसम्पुट में सुखप्रतीति हो रही है। भव्यात्माओं की हृदयभूमि का पापमय अवकर (कूड़ा-कचरा) इससे बह गया है, नष्ट हो गया है। इस जिनेन्द्रभारतीरूप अमृत नीर के सिंचन से श्रेष्ठ धर्मबीज अंकुरित होता है जिसके वृन्तपर मुक्तिरूप महान् फल फलित होता है। इस प्रकार के अत्यन्त शीतल अमृतनिर्झर से मिथ्यात्वरूप दाह की शान्ति होती है। 'महाचन्द्र' का अभिमत है कि इसी अमृतनिर्झर में जो मग्न रहते हैं, अवगाहन करते हैं वे ही अपना जन्म सफल करते हैं।

शब्दार्थ—झर= निर्झर, झरना दिव्यध्वनि= भगवान् जिनेन्द्रकी दिव्यभारती श्रवण= श्रोत्र, कान मिथ्या-तपत= मिथ्यात्वरूप दाह.

" प्रभु! तेरी महिमा किहि मुख गावें ।
गर्भ छ मास अगाउ कनक नग, सुरपति नगर बनावें ।
क्षीर-उदधि-जल, मेरु सिंहासन, मलमल इन्द्र न्हुलावें ।
दीक्षा समय पालकी बैठे इन्द्र कहार कहावें ।
समोसरन ऋध ज्ञानमहातम किहि विधि सरब बतावें ।
आप नजात की बात कहाँ शिव बात सुनें भवि जावें ।
पंचकल्याणक थानक स्वामी ! जे तुम मन वच ध्यावें ।
'द्यानत' तिनकी कौन कथा है, हम देखें सुख पावें ।

—द्यानतपदसंग्रह ७५

अर्थ

हे प्रभो ! आपकी महिमाका वर्णन किस मुख से करें ? आपके गर्भगमन से छह मास पूर्व सुवर्णरत्नों की वर्षा होने लगी और आपके लिए देवेन्द्र ने अयोध्यापुरी की रचना की। जन्मवेला में मेरुगिरि पर क्षीरसागर से नीरकुम्भ लेकर इन्द्र ने मल-मल कर आपका जन्माभिषेक किया। दीक्षा के समय जब आप पालकी पर विराजमान हुए तब इन्द्र ने उसे कन्धा लगाकर कहार के समान आपकी सेवा की। केवलज्ञानप्राप्ति के पश्चात् समवशरण सभा की जो विभवसम्पन्न रचना देवों ने प्रस्तुत की तथा आपने जो दिव्यध्वनि में ज्ञानोपदेश प्रदान किया उसे समग्ररूप में किस भांति कहा जा सकता है ? हे परमात्मन् ! आप कर्मक्षय कर मोक्षलक्ष्मीप्रिय हुए—इसमें कौन-सी आश्चर्यमूलकता है ? आपकी समक्ति चर्चा करने वाले भव्य भी वहां पहुंच जाते हैं। पंचकल्याणक स्थानों के स्वामिन् ! जो आपका मन, वचन, काय-पूर्वक ध्यान करते हैं उनके पुण्यों की श्लाघा तो अपरिसीम है, हमारे जैसे मात्र दर्शन का नियम लेनें वाले भी सुख प्राप्त करते हैं।

झूलें श्रीवीर जिनेन्द्र पलना, त्रिशला देवी के लालन। टेक।
कंचन मनिमय रतनजडितवर, रेशम डोरी के फन्द,
चित्र खचित झल्लर मुतियन की, दुतिलखि लाजत चंद।१।
श्री ह्री आदि झुलावें प्रेम धरि, गावें मंगल छंद,
छप्पन कुमारि घडी इत उतमें, ढोरें चमर आनंद।२।
मुलकि मुलकि पग हाथ चलावत, विहसत मंद सुमंद,
निरखि निरखि छवि लखत 'हजारी', थकित सुरासुर वृंद।३।

अर्थ

श्री जिनेन्द्र महावीर पालने में झूल रहे हैं। भगवान् देवी त्रिशला माता के लाल हैं। पलना सुवर्ण, मणि और रत्नावली से जड़ित है। उसमें रेशम की डोरी का फन्दा लगा है। चित्र-विचित्र मुक्ताफलों की झालर सुशोभित है। भगवान् की बालरूप माधुरी का दर्शनकर चन्द्रमा की द्युति (ओप) लज्जित हो रही है। श्री और ह्री देवियां सप्रेम झुला रही हैं और मंगल छन्दों का उद्गान कर रही हैं। इधर-उधर खड़ी हुई आनन्दमग्न छप्पन कुमारियां चामर ढुला रही हैं। बाल भगवान् मुलक-मुलक कर "मन्दस्मित करते हुए" हाथ-पग चला रहे हैं। मन्दहास विकीर्ण कर रहे हैं। इस छवि को देख कर सुर-असुर मनुज आदि समस्त समूह मुदमग्न हो रहा है। श्री हजारी कवि इस प्रकार भगवान् की बाल-छवि का वर्णन कर रहे हैं।

विपुलाचल शिखर आजि और रूप राजे ॥टेर॥
आये जिन वर्द्धमान समवसरण युत महान,
सुरनर तिर्यंच आनि निजस्थान विराजे ॥१॥
षटऋतु फल फूल सबैं फलिये इन काल,
अबैं दाडिम अरु दाख फबैं आम्र पुंज ताजे ॥२॥
सिंह गोवत्स हेत मूषक मार्जार पेत न्योला,
अरु नाग केत बैर रहित छाजे ॥३॥
सुणियो अतिशय प्रवीन श्रेणिक नृप,
धर्म तीन करमे वसु द्रव्य कीन, पूजन के काजे ॥४॥
कीनूं बहु पुन्य जिनें तप करिकैं रैन दिनैं,
पंडित 'महाचन्द्र' तिनैं देखे महाराजे ॥५॥

अर्थ

आज विपुलाचल शिखर की रूपमाधुरी कुछ और ही हो रही है। आज वर्धमान जिन महान् समवशरण में पधारे हैं। ऐसे आनन्दप्रद समय में सुर, नर और तिर्यंक् आ आकर स्व स्थान पर विराजमान हो गये हैं। आश्चर्य है, छहों ऋतुओं में विभिन्न समय पर फलने वाले, फूलने वाले फल-पुष्प आज एक साथ उद्भिन्न हो उठे हैं। दाडिम (अनार) और द्राक्षा तथा आम ताजे ताजे सद्यःफलित – शोभायमान हैं। सिंह और गोवत्स, मूषक और मार्जार तथा नकुल और नाग परस्पर बैर रहित हो गये हैं। हे भव्यों। सुनो, अत्यन्त कुशल तथा धर्मानुरागी श्रेणिक नृपति ने भगवान के पूजा-अर्चनार्थ अष्ट द्रव्यों को हाथ में उठा लिया है। वीतराग परमेश्वर के उस महान समवशरण का दर्शन उन्होंने किया, जिनके पुण्य अतिशय स्फीत थे और जिन्होंने रात्रिन्दिव तप किया था। पण्डित 'महाचन्द्र' ऐसा वर्णन करते हैं।

सिद्धारथ राजा दरबारें बटत बधाई रंग भरी हो ॥टेक॥
त्रिसला देवी नें सुतजायो वर्द्धमान जिनराज बरी हो,
कुंडलपुर में घर घर द्वारे होय रही आनंद घरी हो ॥१॥
रत्नन की वर्षा को होते पंद्रह मास भये सगरी हो,
आज गगन दिश निरमल दीखत पुष्प वृष्टि गंधोव झरी हो ॥२॥
जन्मन जिनके जग सुख पाया दूरि गये सब दुक्ख टरी हो,
अन्तर मुहूर्त नारकी सुखिया ऐसो अतिशय जन्म घरी हो ॥३॥
दान देय नृपने बहुतेरो जाचिक जन मन हर्ष करी हो,
ऐसे बीर जिनेश्वर चरणों 'बुध महाचन्द्र' जु सीस धरी हो ॥४॥

अर्थ

महाराज सिद्धार्थ के दरबार में आज रंगभरी बधाई बट रही हैं। देवी त्रिशला ने पुत्र प्रसव किया हैं। वह पुत्र (अन्तिम तीर्थंकर) जिनराज वर्धमान हैं। कुण्डलपुर में घर घर और द्वार द्वार आनन्द की यह शुभ घड़ी व्याप्त हो रही है। अहो! रत्नों की वर्षा होते पन्द्रह मास हो गये। आज आकाश, दिशाएं, निर्मल प्रतीत हो रही हैं और पुष्प वृष्टि हो रही है, गन्धोदक की झड़ी 'वर्षा' लगी हुई है। भगवान के जन्म ग्रहण करते समय संसार ने सुख पाया और सब दुःख दूर हो गये, टल गये। भगवान का अतिशय युक्त जन्म वर्णन कैसे किया जाए, उस समय अन्तर्मुहूर्त के लिए नारकियों को भी सुख प्राप्ति हुई। राजा ने बहुत सा दान देकर याचकों तथा जनमानस को प्रहर्षित कर दिया। ऐसे वीर जिनेश्वर के चरणों में 'बुध महाचन्द' मस्तक नमाते हुए विनय भक्ति करते हैं।

आजि वीर जिन मुक्ति पधारे ।
त्रिभुवन पति मिलि पूजे सारे ।।टेक।।
पावापुर ढिग सुन्दर बन में ।
सकल देव जय शब्द उचारे ।।

अगनि कुमार अगर चन्दन जुत ।
मुकट अगनि करि भस्म करारे ।।

भस्मी सुरपति मस्तक धारे ।
भवि जन आये सोर सुनारे ।।

घर घर दीपक ज्योति जगारे ।
ता दिन तें उच्छव चलियारे ।।

सतक च्यार सतरि संवत्सर ।
पीछें विक्रम राज धरारे ।।

कातिग कृष्ण चतुर्दिश कारे
पिछली निशि के टूक घटियारे ।।

मोदकादि नैवेद्य वितारे ।
सोही ले भवि पूज रचारे ।।

सोउ छवि अब लूं लखि 'पारस' ।
मुक्ति गमन श्रद्धान धरारे ।।

—पारस विलास, पृष्ठ ९७

अर्थ

आज जिन श्रीवीर प्रभु मुक्ति को पधारे हैं, मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। सम्पूर्ण लोक मिलजुल कर त्रिभुवनपति भगवान की पूजा-अर्चा कर रहे हैं। पावापुर के समीप सुन्दरवन में समस्त देवकुल जय शब्द का उच्चारण कर रहे हैं। अग्निकुमार अपना मुकुट स्पर्श कराते हुए अगर चन्दन से युक्त भगवान के पौद्गलिक देह को पवित्र भस्म में परिणत कर रहे हैं। उस भस्म को देवराज इन्द्र मस्तक पर धारण कर रहे हैं। भगवान के निर्वाण का मंगल कोलाहल सुनकर भव्यजन दौड़े आये और उन्होंने घर घर में दीपज्योति कर आनन्द उत्सव मनाया। दीपावली का महोत्सव उसी दिन से चला आ रहा है। भगवान के निर्वाण को चार सौ सत्तर वर्ष व्यतीत होने पर विक्रमादित्य ने राज्य धारण किया, विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया। वह परमपवित्र निर्वाण दिवस, जिस समय वीतराग प्रभु ने मुक्तरमाका वरण किया, कार्तिक कृष्ण चतुदर्शी की उत्तर रात्रि का था, जब दो घटी रात्रि अवशेष थी। निर्वाण मोदक के रूप में नैवेद्य समर्पण उसी समय की प्रसन्नस्मृति का द्योतक है। भव्यजन भगवान की पूजा करते हैं। हे पारस ! उसी छवि का आज तुम भी अवलोकन करो और मोक्ष मार्ग पर जाने के लिए वीतराग जिनेन्द्र देव पर श्रद्धान रक्खो।

" आदि ओंकार आप परमेसर परम ज्योति
अगम अगोचर अलख रूप गायो है।
द्रव्यता में एक पै अनेक भेद परजों में
जाको जसवास मत बहुन में छायो है।
त्रिगुन त्रिकालमेब तीनों लोक तीन देव
अष्ट सिद्धि नवों निधि-दायक कहायो है।
अक्षर के रूप में स्वरूप भुअलोक हूं को
ऐसो ओंकार 'हर्षचन्द' मुनि गायो है।"

—जैन गुर्जर कविओ ३ भाग।

अर्थ

हे सिद्ध परमात्मन् ! आप ओंकार पद से सम्बोधित प्रथम परमेष्ठी हैं। "ओम नमः सिद्धेभ्यः' यह सर्वप्रथम स्तवनीय मंत्र है" आप परम ज्योतिर्मय हैं, निराकार होने से अगम्य एवं अगोचर हैं। आपके अलक्ष्य अलख) रूप का आगम-शास्त्र गान करते हैं। आपने एक ही द्रव्य को पर्याय विभक्ति से अनेक भेद भिन्न कहा है। आपका यशस्वी मत लोक में बहुतों में छाया हुआ है। आप त्रिगुणात्मक हैं, त्रिकाल, तीन लोक और तीनों देव आपके ओंकार से परिवेष्टित हैं। आप अष्ट सिद्धियों और नवनिधियों के प्रदाता कहे जाते हैं। सम्पूर्ण लोक आपके ओंकार अक्षर में समाया हुआ है। 'हर्षचन्द' मुनि ने यह पंचपरमेष्ठी के प्रतीक ओंकार का गान किया है।

विढ़-कर्माचल-दलन पवि, भवि-सरोज-रविराय।
कंचन छवि कर जोर कवि, नमत वीर जिन पाय॥
रहौ दूर अंतर की महिमा, बाहिज गुनवरनन बल कापै।
एकहजार आठ लच्छन तन, तेज कोटि रवि-किरन उथापै॥
सुरपति सहसआंख अंजुलिसौं, रूपामृत पीवत नहिं धापै।
तुम बिन कौन समर्थ वीर जिन, जगसौं काढ़ि मोखमैं थापै॥

अर्थ

हे भगवान् महावीर ! आप सुदृढ़ कर्म को दलित करने में अमोघ वज्र हैं, भव्यजनरूप कमलतन के लिए सूर्य सदृश हैं। आपकी छवि कांचनाम है। कवि बद्धांजलि होकर वीर जिनेश्वर के चरणों में नमन करता है। आपके अन्त: स्थित अनन्त गुणावली का बखान तो होना अवश्य ही है, बाह्य गुणों के निरूपण का बल-सामर्थ्य भी किसे प्राप्त है। आपके शरीर में अष्टोत्तर सहस्र शुभ लक्षण विद्यमान हैं। तेज कोटि कोटि रवि किरणों को निष्प्रभ कर देता है। इन्द्र सहस्र लोचनों की अंजलि से भगवान के रूप पीयूष को पान करते हुए परितृप्त नहीं हो रहा है। हे जिनेन्द्र वीर ! आप बिना अन्य कौन ऐसा सामर्थ्यशील है जो संसार से निकालकर मोक्ष में स्थापित कर सके।

महावीर महाराज। दया कर कष्ट हरो। प्रभुजी ॥टेक॥
सीता सती द्रोपदा रानी, लज्जा राखी चीर बढ़यों ॥१॥
बेड़ा हमारो पार लगैयो, भव सागर मंझधार परयो ॥२॥
श्रीपाल को उदधि से उबारो, रेन मंजूषा को शील खरो ॥३॥
संकट है अब दास छबीले, दुःख हरो भव पार करो ॥४॥

अर्थ

हे महाराज, हे महावीर ! कृपया मेरे कष्टों का निवारण कीजिए। आपने सती शिरोमणि सीता और रानी द्रौपदी की लज्जा रक्षा की, चीर बढ़ाया। मैं भव सागर में मंझधार पड़ा हूँ, मेरा बेड़ा (नौका जहाज) पार लगा दीजिए। आपने श्रीपाल की समुद्र में रक्षा की, मंजूषा के निष्पाप शील का परित्राण किया, अब सेवक पर संकटों की घटा घिरी है, हे भगवान् ! अशरण शरण ! दुःख निवारण करते हुए इस छबीले दास को भव सिन्धु से पार उतार दीजिए।

हमारी वीर हरो भव पीर । हमारी० ।
मै, दुख तपित दयामृत सागर, लखि आयो तुम तीर,
तुम परमेश मोखमग दर्शक, मोह दवानल नीर ।१।
तुम बिन हेत जगत उपकारी, शुद्ध चिदानन्द धीर,
गनपति ज्ञान समुद्र न लंघै, तुम गुन सिंधु गंभीर ।२।
याद नहीं मैं विपत्ति सही जो, धर धर अमित शरीर,
तुम गुन चितत नशत तथा भय, ज्यों घन चलत समीर ।३।
कोटि बार की अरज यही है, मैं दुख सहूं अधीर,
हरहु वेदना फन्द 'दौलत' की, कतर कर्म जंजीर ।४।

अर्थ

हे वीर ! हमारी संसार चक्र की व्यथा को दूर कीजिए । हे दया-अनुकम्पा के समुद्र ! हे परम कारुणिक ! मैं दुःखों से संतप्त हूँ और दुःख परिहारार्थ आपके कृपासिंधु तट पर उपस्थित हुआ हूँ । आप परमेश्वर हैं, मोक्ष पथ के दर्शयिता हैं तथा मोह रूप प्रचण्ड दावानल को शमन करने में नीर समान हैं । आप बिना हेतु के विश्व का उपकार करने वाले हैं, शुद्ध परमात्मा हैं, धीर हैं। आपके अपार ज्ञान समुद्र का गणपति (बुद्धिके देवता गणेश अथवा गणधरदेव) भी उल्लंघन (पारदर्शन) नहीं कर सकते, आप गंभीर गुणसिन्धु हैं । मेंने अनन्त शरीर धारण करते हुए जिन विपत्तियों को सहन किया, उनका स्मरण नहीं है अर्थात् वे इतनी अधिक तथा विपुल हैं कि स्मरण रखना भी दुष्कर है । आपके गुणों का चिन्तन करने से उन समस्त भयों का वैसे ही नाश हो जाता है जैसे पवन के चलने से बादल छितर जाते हैं । मेरी कोटिशः यही प्रार्थना है कि मैं अधीर दुःख भुगत रहा हूँ आप इस 'दौलत" की कर्मशृंखलाओं का निकृन्तन करके वेदना जाल से मुक्त कर दीजिए ।

जय श्रीवीर जयति महावीर, अतिवीर सन्मति दातार।
वर्द्धमान तुमरा जस जगमें, तुम अंतम तीरथंकर सार ॥१॥
पंचम काल विषै तुम शासन, करत जगत जीवन उद्धार ॥२॥
सिद्धारथनृप पिता तुम्हारे, त्रिशलादेवी मात तुमार।
सप्तहस्त तन तुंग तुमारो, नाथवंस के तुम सिरदार ॥३॥

—दि० जैन सरस्वती भंडार, गुटका न० ६५, धर्मपुरा दिल्ली

अर्थ

तीर्थंकर परमदेव श्री महावीर भगवान् की जय हो। भगवान् वीर हैं, महावीर हैं, अतिवीर और सन्मति हैं, वही सर्व सिद्धियों के प्रदाता हैं। भगवान का सुयश संसार में वर्धमान है, नित्य वृद्धिप्राप्त है। प्रभो ! आप अन्तिम तीर्थंकर हैं, संसार के लिए सारभूत हैं। इस पंचम काल में आपका ही शासन प्रचलित है। आप ही संसार के जीवों का उद्धार करने वाले हैं। सिद्धार्थ नृपति आपके पिता एवं देवी त्रिशला आपकी माता हैं। सप्तहस्त प्रमाण आपका कायोत्सेध था आप नाथवंश के मस्तक स्थानीय प्रधान मुकुटमणि थे।

महावीर जिनेन्द्र, मेरे कर्मों के फंद छुड़ायदो ।

तप की तोप ज्ञान का गोला, मानबुरज का उड़ायदो ॥१॥

लाख चुरासी योनी में भटका, जम्मण मरण मिटायदो ॥२॥

कहत 'हुक्मचन्द' दो कर जोरी, शिवपुर मोहि पोहंचायदो ॥३॥

—दि० जैन सरस्वती भंडार, गुटका न० ६५, धर्मपुरा दिल्ली

अर्थ

हे जिनपति महावीर, मेरे कर्म बन्धनों को छुड़ा दीजिए । अपने तपोबल की तोप में सर्वज्ञत्व का गोला रखकर मेरी मानकषाय रूप बुर्ज को आप उड़ा दीजिए, नष्ट कर दीजिए । मैं चौरासी लाख जन्म योनियों में भटक चुका हूँ अब कृपापूर्वक आप मेरे जन्म–मरण के चक्र को मिटा दीजिए । 'हुक्मचन्द' अपने पाणियुगल जोड़ कर 'करबद्ध' प्रार्थना करता है कि हे तरनारन! मुझे शिवलोक पहुँचा दीजिए ।

सब मिल देखो हेली म्हारी हे, त्रिसलाबाल बदन रसाल।
आये जुतसमवसरन कृपाल, विचरत अभय व्याल मराल,
फलित भई सकल तरुमाल । सब० ॥१॥
नैन न हाल भ्रकुटी न चाल, बैन विदारै विभ्रमजाल,
छवि लखि होत संत निहाल । सब० ॥२॥
वंदनकाज साज समाज, संग लिये स्वजन पुरजन बाज,
श्रेणिक चलत है नरपाल । सब० ॥३॥
यों कहि मोदजुत पुरबाल, लखन चली चरमजिनपाल,
दौलत नमत कर धर भाल । सब० ॥४॥

अर्थ

हे प्रिय सखियो। आओ, सब मिलकर देवी त्रिशला के नन्दन महावीर के प्रसन्न वदन का दर्शन करें। कृपामय भगवान् समवशरण में पधारे हुए हैं। प्रभु की उपस्थिति से सर्प, मयूर, गौ, सिंह आदि परस्पर विरोधी जीव निर्वैर होकर निर्भय विचरण कर रहे हैं। सम्पूर्ण तरुवल्लियां ऋतुविशेष का विस्मरण कर पुष्प-फलों से शोभायमान हैं। प्रभु के नेत्र स्थिर हैं, भृकुटियाँ अचल हैं और दिव्यध्वनि समस्त भ्रमजाल को विदीर्ण करने में कुशल है। इस छवि को, रूपमाधुरी को निरख कर साधुहृदय निहाल 'धन्य' हो उठे हैं। भगवान् की वन्दना करने के लिए समाज सहित स्वजन–पुरजनों का समूह लिये नरपति श्रेणिक चले जा रहे हैं। ऐसा परस्पर वार्तालाप करती हुई, प्रसन्नमन नागरिक बालाएं पौरवधुएं अन्तिम जिनेन्द्र महावीर के दर्शन को जा रही हैं। 'दौलतराम' अपने जुड़े हुए युगलकरों पर सविनय मस्तक रखकर परमदेव जिनपति को नमन करते हैं।

जब बानी खिरी महावीर की तब, ग्रानन्द भयो ग्रपार हो ।
सब प्रानी मन ऊपजी हो, धिकधिक यह संसार ॥ टेक ॥
बहुतनि समकित ग्रादर्‌यो हो, श्रावक भये ग्रनेक,
घर तजिके बहु बन गये हो, हिरदै धर्‌यो विवेक ॥ १ ॥
केई भावैं भावना हो, केई गहैं तप घोर,
केई जपैं प्रभु नाम को, भांजैं कर्म कठोर ॥ २ ॥
बहुतन तप करि शिव गये हो, बहुत गये सुरलोय,
'द्यानत' तो बानी सदा हो, जयवंती जग होय ॥ ३ ॥

ग्रर्थ

जिस समय केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् महावीर की ग्रमृतवर्षिणी दिव्यध्वनि प्रकट हुई तब ग्रानन्द का वारपार नहीं रहा। उस समय सभी मनस्वियों के मानस में संसार की हेयता का, उसके प्रति धिक्कार का भाव उत्पन्न हुग्रा। बहुतों ने समकित ग्रहण किया, ग्रनेक श्रावक (तीर्थंकर वाणी के श्रोता) हो गये ग्रौर बहुतों ने हृदय में सम्यक्त्व विवेक प्राप्त कर, गृह त्यागते हुए मुनित्व धारण किया। कुछ सर्वथा ग्रनिकेत होने में ग्रक्षम धर्मानुरागी मुनित्व की भावना भाने लगे ग्रौर कुछ घोर तप करने लगे। कई प्रभु का नाम जपने में प्रवृत्त हुए ग्रौर इन क्षायिक विधियों से कठोर कर्मशृंखलाग्रों को भग्न करने लगे, तोड़ने लगे। ग्रनेक तपश्चरण के परिणाम से शिवलोकगामी हुए ग्रौर ग्रनेक स्वर्ग को प्राप्त करने में सफल हुए। कवि 'द्यानतराय' कहते हैं, हे परमात्मन् ! हे वीतराग परमदेव! ग्रापकी दिव्यभाषा संसार में सदैव जयशील है।

सन्मति भव सागर के मांहि, नैया पार लगाने वाले ॥टेक॥
आये पावापुर के बीच, मारे बैरी आठों नीच ।
अपने ध्यान धनुष को खींच, कर्म के कोट उड़ाने वाले ॥१॥
लेकर चक्र सुदर्शन ज्ञान, करके मिथ्या मत को भान ।
जतला कर 'न्यामत' परवान, मुक्ति की राह बताने वाले ॥२॥

अर्थ

सन्मति महावीर प्रभु, भव-सागर के बीच पड़ी, हमारी जीवन रूपी नौका को पार लगाने वाले हैं। जब वे पावापुर में आये, तब अपने दुर्द्धर्ष तप के द्वारा आठों नीच शत्रुओं 'आठ कर्मों' को भस्म कर दिया। उन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी धनुष खींचकर ऐसा मारा कि कर्म रूपी किला उड़ गया। भगवान् ने सम्यग् दर्शन और सम्यग् ज्ञान का चक्र धारण किया। उन्होंने इस सम्यग् दर्शन ज्ञान से मिथ्यात्व को जाना। कवि "न्यामत" कहते हैं कि वह इसप्रकार प्रमाण को जताकर मुक्ति मार्ग बताने वाले हैं।

बधाई भई है महावीर

हो जी म्हारे, नैनन लखि हरषाय ॥टेक॥

बनि ग्राई सब मौज री, मुख कहिय न जाय ।

हो जी म्हारे बिछुरत बनि नहि ग्राय ॥१॥

दुख खोयो सब जनमको ग्रानंद बढ़ाय ।

हो जी मैं तो सब विधि पूजों पाय ॥२॥

ग्रथं

ग्राज भगवान् महावीर के दर्शन हुए। यह बधाई की वेला है। उनके दर्शनकर मेरे नेत्र खिल गये हैं। मेरे सब मौज बनि ग्राई है ग्रर्थात् सब सुख प्राप्त हो गए हैं, ऐसे कि जिनका वर्णन मुख से नहीं किया जा सकता। ग्रब तो प्रभु से बिछुड़ते एक पल के लिए भी दूर होते नहीं बनता मेरा जन्म-जन्मान्तर का दुख नष्ट हो गया ग्रौर परमानन्द प्राप्त हुग्रा है। भक्त कवि ललककर कहता है कि मैं तो सब विधियों से प्रभु के पैर पूजता हूँ।

जाको जपि जपि सब दुख दूरि होत वीरा।
उस प्रभु को नित ध्यांऊ रे ॥टेक॥
दोष आवरण गत, दायक शिवपथ।
तारन तरन सुभाऊं रे ॥टेक॥
ज्ञान दृग धारी, मुक्त-सुख-कारी।
अतिशय सहित लखाऊं रे ॥टेक॥
मोह मद भोया भूरि दिन खोया।
"छत्ते" लहा अब दाऊं रे ॥टेक॥

अर्थ

जिसको जप-जप कर सब दुख दूर हो जाते हैं, उस वीर प्रभु को नित्य ध्याऊं, ऐसा मेरा भाव है। उन प्रभु में से सब दोष निकल गये हैं, वे शिव-पथ "मोक्ष मार्ग" के देने वाले हैं और 'तारन-तरन' उनका स्वभाव है। वे ज्ञान 'केवलज्ञान' रूपी नेत्रों के धारण करने वाले हैं और मुक्ति रूपी सुख को प्रदान करते हैं तथा मैं उन्हें ३४ अतिशयों से संयुक्त देखता हूँ। कवि छत्रपति का कथन है कि मैं अभी तक मोह-मद में सराबोर रहा और इसी भांति जीवन के अनेक 'मूल्यवान' दिन खो दिए। अब कहीं अवसर मिला है। मैं उसे खोऊंगा नहीं।

सारद तणी सेवा मन धरो ।
जा प्रसाद कविता ऊचरो ।।टेक।।
मूरष ते पंडित पद होई ,
ता कारण सेवे सब कोई ।
छह दरसण मुषी भेद नसाणा ।।
वरह गलगजमोती-हार ,
गले पाटीयो सोव्रनं सरीर ।
कानां कुंडल रतनं जडी ,
सीष मोगी मोत्या झलमले ।
चरण नेवर रुणझुण करे ,
हंस चढी कर वीण लेह ।
सुमात बुधी महाफल देह ,
सारद नवणी कर बहु भाई ।।

—भाकृत 'आदित्यवार कथा'

अर्थ

श्री भाऊ कवि कहते हैं कि मैं शारदा की उपासना मन में धारण करता हूँ। उसी के कृपा प्रसाद से कवित - कवित्व - कविता का उच्चारण करता हूँ। श्री शारदा अम्बा की कृपा से मूर्ख पण्डित पद को प्राप्त करता है। यही हेतु है कि इसकी सेवा सभी करते हैं। इस वाणी के षड्दर्शनरूप छह मुख हैं। वाग्देवी भेद को नष्ट करने वाली है अर्थात् 'दासोहं' से सोहं तक पहुँचाने वाली है। उसकी ग्रीवा में श्रेष्ठ गजमुक्तावलियों का हार सुशोभित है, गले में सुवर्णपट्ट 'पटिया राजस्थानी' है और शरीर सौवर्णकान्ति है। कानों में रत्नजटित कुण्डल हैं और शीष पर महामूल्यवान् मोगी मुहपी महर्घ-महामूल्य मोती झलमल दिप रहे हैं। चरणों में नूपुर रुनझुन करते हैं। वह हाथों में वीणा लिए हुए हंस पर चढ़ी हैं। उसका स्मरण बुद्धिरूप महाफल का प्रदाता है। अतः हे भाई ! शारदा अम्बा को प्रणाम करो।

कवित—कविता, कवित्व, भेड—भेद, पाटीयो—पटीयः, पटियान् अतिशयेन पट्टः पटियान्
मोगी—महर्घ, बहुमूल्य, नेवर—नूपुर नूपुर नूउर नेउर नेवर
"राजस्थान में गलपटिया बनाने वाले पटुआ 'पटु' कहलाते हैं।"

मो मना में भायो महावीर ।
जिया प्रबोध लयौ हांकि,
मोह कांपि रह्यो थरहररर थरहररर ॥टेक॥१॥
आज अनंद मोहि, लखियत भारी मोहि
लखियत भारी मोहि, दुक्ख रहौ ना तीर ।
यहाँ से भाजि गयो हांकि ॥ मोह कांपि० ॥२॥
पूरन काज भयो, जु "हजारी" भयो
जु "हजारी" भयो, श्रद्धा हुई गहीर ।
सबै क्लेश गयो जिया हांदि ॥ मोह कांपि० ॥३॥

अर्थ

मेरे मन में भगवान् महावीर की भक्ति है, वही मुझे भाते हैं। मेरे मन ने प्रबोध प्राप्त कर लिया है कि मोह थर थर कांप रहा है। वीतराग परमदेव की मंजु छवि का दर्शन कर मुझे आज महान् आनन्द की प्राप्ति हुई है। दुःख का लेश भी नहीं रहा है। वह यहाँ से (मेरे निकट से) कहीं अन्यत्र भाग गया है। हां, कि मोह थर–थर कांप रहा है। आज मेरे समस्त अभिलषित 'सब काज' पूर्ण हो गये। मेरी भगवान में दृढ़ श्रद्धा हुई। मन के सम्पूर्ण क्लेश 'कर्म परिणाम' नष्ट हो गये। हां, कि मोह थर-थर कांप रहा है।

अब सनमति वर्द्धमान महावीर ध्याऊं ।
इनही के ध्याये ते मुक्ति रमनि पाऊं ॥
आन देव ध्याय भाव मिथ्या सरधान पाय ।
मिथ्या गुरु प्रचार मांय नाहक भरमाऊं ॥
अनेकान्त जानि बानि मिथ्या एकान्त मानि ।
दो वू नयतैं पिछानि स्वं पर दरसाऊं ॥
पारस न मिल्यो सुज्ञान तब लूं भमियो अजान ।
ज्ञान ही बतायो पंथ दृढ़ धरिउ भगावू ॥

—पारस विलास भंडार, कूचां सेठ, पृष्ठ ५३

अर्थ

मैं अब सन्मति वर्धमान 'भगवान महावीर' का ध्यान करूंगा। इनका ध्यान करने पर ही मुझे मुक्ति रमणी 'मोक्ष श्री' की सम्प्राप्ति हो सकेगी। इतर देवों का ध्यान करते हुए मैंने मिथ्याभाव और मिथ्याश्रद्धान को ही प्राप्त किया। सम्प्रति मेरी अभिलाषा है कि मैं मिथ्यात्वी गुरुओं के प्रचार 'दुष्प्रचार' में व्यर्थ भ्रममुग्ध न रहूँ। निश्चयनय तथा व्यवहारनय इन दोनों नयों से परम आत्म तत्व को पहचान कर मैं स्व और पर का साक्षात्कार करूंगा। कविवर 'पारस' कहते हैं कि जब तक सम्यग् ज्ञान नहीं मिला तब तक मैं भ्रान्त रहा, अजान बना रहा। अब तो सम्यग् ज्ञान ने ही प्रशस्त पथ बता दिया है, मैं उसी पर दृढ़ता धारण करूंगा।

'बोलि वादीचन्द्र गणनु कुण रत्नाकर ।
अवनि एक तु मल अचल महिमाम हिमाकर ।।
तु असलउ अरदेव जित भवतारण ।
आश्रीतनां जे लोक तेहनुं नरक-निवारण ।।
ऋषभदेव वंछित भलो, बाहुबल जग जाणीइं ।
भगति पामी भाव सुं तुम गुण एक बखाणीइ ।।'

—जैन गुर्जरकविम्रो, ३ भाग, पृष्ठ ८०४ पद्य सं० ४८

अर्थ

कौन वादिचन्द्र रत्नाकर कीं मणिराशि की गणना कर सकता है । हे भगवान् बाहुबली ! गोम्मटेश्वर ! पृथ्वीतल पर एकमात्र आप ही मल्ल हैं — संसार को द्वन्द्व में पराजित करने वाले बली हैं । आप ही अविचल महिमा के आकर (कोष) हैं । आप वास्तविक अरहन्तदेव हैं, नग्न-निर्ग्रन्थ जिन हैं और संसार से तारने वाले हैं । जो आपका आश्रय ग्रहण करते हैं उन्हें नरक से (अधोगति से) बचाने वाले आप हैं । भगवान श्री ऋषभदेव के वांछित पथ पर आप चलने वाले हैं, भले हैं । आपके बाहुबल को संसार जानता है । मैंने भाव-भक्तिपूर्वक तुम्हारे एक गुण का बखान किया है ।

जय वीर जिनवीर जिनवीर जिनचदं,
कलुषनिकंद मुनिहृदसुखकंद ।।टेक।।
सिद्धारथनंद त्रिभुवन को दिनेन्दचन्द,
जा वचकिरन भ्रम तिमिरनिकंदं ।।१।।
जाके पदअरबिन्द सेवत सुरेंद्रवृंद,
जा के गुन रटत फटत भवफंद ।।२।।
जाकी शान्तिमुद्रा निरखत हरखत रिखि,
जाके अनुभवत लहत चिदानन्द ।।३।।
जाके घातिकर्म विघटत प्रघटत भये,
अनन्त दरस बोध-वीरज अनन्द ।।४।।
लोकलोकज्ञाता पै स्वभावरत राता प्रभु,
जगको कुशलदाता त्राता पै अद्वंद ।।५।।
जाकी महिमा अपार गणी न सके उचार,
दौलत नमत सुख चहत अमंद ।।६।।

अर्थ

जय हो वीर, वीर जिनेश्वर, हे जिनचन्द्र ! आपकी जय हो । हे पापों के नाश करने वाले ! हे मुनि मानस में सुख का अंकुर आविर्भूत कराने वाले ! आप जयशील हों । हे सिद्धार्थ सुत ! त्रिभुवन के सूर्य और चन्द ! आपकी वचन-किरणों से भ्रमरूपतिमिर दूर हो जाता है । जिनेश्वर के चरणारविन्द की सेवा देवेन्द्र समूह करते हैं । भगवान् के गुण कीर्तन से संसार के बन्धन कट जाते हैं । वीतराग परमदेव की शान्तिमय मुद्रा का दर्शनकर ऋषियों के मानस प्रहर्ष पुलकित हो उठते हैं । इन्हीं परमदेव के स्मरणों से उन्हें चिदानन्द का अनुभव होता है । जिनके घातिय कर्मों का क्षय होते ही अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द प्रकट हो गए । प्रभु लोकालोक के ज्ञाता हैं तथापि स्वभाव में रत हैं (तन्मयता से स्वस्वरूपावस्थित हो) हैं—वह संसार को "मोक्षमार्गोपदेष्टा होने से" कशुलता प्रदान करने वाले हैं, रक्षक हैं तथापि निर्द्वन्द्व हैं, किसी प्रकार के द्वन्द्वाभिघात से बाधित नहीं हैं । भगवान् की अपार महिमा का अखिल-उच्चारण गणधर देव भी नहीं कर सकते । "दौलत" उनकी वन्दना करते हैं तथा अविनाशी सुख की चाह रखते हैं ।

'चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना ।
पग खूंटे द्वय हालन लागे, उर मदरा खखराना ।।
छीदी हुई पाँखुड़ी पसली, फिरे नहीं मनमाना ।। चरखा हुआ०।।
रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूंटे ।
सबद-सूत सूधा नहिं निकसे, घड़ी-घड़ी-पल टूटे ।। चरखा हुआ०।।
आयु-माल का नहीं भरोसा, अंग चलाचल सारे ।
रोज इलाज मरम्मत चाहे, बैद-बाढई हारे ।। चरखा हुआ०।।
नया चरखला रंगा रंगा, सबका चित चुरावे ।
पलटा वरन, गये गुन अगले अब देखे नहिं भावे ।। चरखा हुआ०।।
मोटा-महीं कातकर भाई ! फिर अपना सुरझेरा ।
अन्त आग में इन्धन होगा 'भूधर' समझ सबेरा ।। चरखा हुआ०।।

—कविवर भूधरदास

अर्थ

अब यह चर्खा "तन्तु चक्र" चलता नहीं, पुराना जो हो गया है। कवि ने रोग-वार्धक्य जर्जर शरीर को चर्खा कहा है। प्रथम पंक्ति में चर्खे का प्रयोग प्रतीकात्मक है परन्तु आगे रूपक का गठन है। इस शरीर रूप तन्तुचक्र के दो पग ही दोनों खूंटे हैं जो सन्धियों के शिथिल होने से हिलने लगे हैं। हृदय रूप मध्यभाग खर-खर करने लगा है, श्लेष्मा की अधिकता से श्वास बोलने लगे हैं। इसकी पंखुड़ियाँ 'आरे' तथा पसलियां 'पशुकाएं' छीदी-विरल होकर फैल गई हैं इसलिए अब इच्छानुकूल नहीं फिरता। इसकी जिह्वारूप तकली "सूत अटेरने वाली चर्खी" में बल पड़ गए है—वक्रता आ गई है अब वह अपने खूंटे से बधी रहने में अशक्त है। शब्द रूप सूत्र "तन्तु, धागा" अब सीधा नहीं निकलता है और घड़ी-घड़ी, पल-पल टूट-टूट जाता है। इन लक्षणों को देखते हुए आयुरूप माव्ठ (चर्खे का एक उपकरण) का कोई भरोसा नहीं रहा। इसके सारे अंग-प्रत्यंग चलायमान हो चले हैं। प्रतिदिन शरीर चिकित्सा चाहता है और यह चर्खा मरम्मत माँगता है। वैद्य और वर्धकि (बढई) हार गए हैं। इसमें आश्चर्य अथवा अनहोनी "अभूतभावी" भी क्या है। नवीन तन्तुचक्र तो नेत्रहारी रंगा-रंगा होता ही है और सबका चित्त चुराता ही है। किन्तु अवस्था परिपक्व होने पर यौवन के वे वर्ण बदल जाते हैं और स्पृहणीय गुणों का अवसान हो जाता है। अब तो यह अपरूप दूसरों को क्या स्वयं को भी अच्छा नही लगता। किन्तु कहावत है —"जब तक जीना तब तक सीन ।"—अतः हे भाई ! नये न रहे, पुराने सही। कातना तो पड़ेगा। अन्तिम क्षणावधि कार्य तो करना ही होगा। मोटा या महीन जैसा बन पड़े, कर्तव्यरूप सूत्र को कातकर अपने को जीवन की उलझन से सुलझा लो। क्योंकि एक दिन जब मोटा महीन कातने की भी शक्ति नहीं रहेगी—वह चर्खा चर्खा न रहेगा, कोरा काष्ठ समझा जाएगा तब इसे अग्नि-समर्पित कर दिया जाएगा। 'भूधर' कवि कहते हैं इस सत्य को समझो।

नमो नमो जय श्री महावीर ।
अंतिम तीर्थंकर अघहर प्रभु जाके,
गौतम गणधर धीर ।
श्रोता सैनिक नृप सम बिठी,
पूनैः[1] वेद पुरान गंभीर ।
सो उपदेश चलत है अब लौं,
जातें जग पावै भवजल तीर ॥

अर्थ

श्री महावीर स्वामी जी के चरणों को मैं बार बार नमस्कार करता हूँ। श्री महावीर स्वामी जी की जय हो। श्री महावीर स्वामी चौबीस तीर्थंकरों में से अन्तिम है तथा उनके स्मरण मात्र से ही पाप नष्ट हो जाते हैं। गौतम स्वामी उनके गणधर हैं जो कि बड़े महान् व धैर्यवान हैं। भगवान् की अमृत वाणी के श्रोता सैनिक तथा राजागण सभी हैं और सभी उनकी दृष्टि में समान हैं "कोई छोटे-बड़े का भेद-भाव नहीं है"। भगवान् की पवित्र वाणी के द्वारा वेदों तथा पुराणों के गंभीर विषयों की विशद व्याख्या की जाती है। भगवान् का दिया हुआ उपदेश आज तक भी शास्त्रों के द्वारा संसार में प्रचलित है, जिसको ग्रहण करके प्राणि संसार के पार उतर जाते हैं।

पाठ भेद
१ गुनैं

मुझे महावीर भरोसो तेरो भारी ।
तुमने मुझे मनुष पद दीना, तुमने दुरगत टारी ।
अब ये अधम बीच में लटके, भव-सागर प्रभु नाव हमारी ॥
अब हमसे दुखिया जग में, अब तुमसे उपगारी ।
बिन कारन तुम जग-जन तारो, यातें आये प्रभु सरन तुम्हारी ॥
वीतराग मुद्रा लख उपजो, "नैनानंद" अपारी ।
यातें चरन-सरन हम आये, राखो प्रभु तुम लाज हमारी ॥

अर्थ

हे भगवान् महावीर हमें तेरा ही भरोसा है । तेरी ही कृपा से हमें मानव जन्म प्राप्त हुआ और अन्य जघन्य योनियों में भ्रमण करने से बच गये, परन्तु प्रभु हम अधम "पापी" जीव अभी भी बीच में लटके हुए हैं, हमारी नाव भवसागर में डूब रही है । इस संसार में हमारे समान पापी एवं दुखी तथा आपके समान उपकार करने वाला अन्य कोई नहीं है । हे प्रभु ! आप केवल दया भाव से ही संसारिक जीवों को संसार के पार लगा देते हो, इसी कारण हम आपकी शरण में आये हैं । आपकी परम वीतराग शांत मुद्रा को देख कर हमारे मन में अपार हर्ष उत्पन्न हो गया । "नैनानंद" कवि कहते हैं कि हे प्रभु इसी कारण हम आपके चरणों की शरण में आये हैं आप हमारी लाज रखिए ।

महावीर स्वामी अबकी तो अरजी सुनि लीजियं ।
अतिवीर वीर तुम सनमत्त सनमति दीजिये ॥टेक॥
अजग ईस जे सनमुख आये, ते सब एक छिन कर्म ढाये ।
ऐसो वीर काम भट ताको, तुम सनमुख बल छीजिये ॥ १ ॥
परिगृह छांडि बसे मन मांही, निजरंच बाहर की सुध नांही ।
सिद्ध कियो आतमबल तपतें, चार कर्म रिपु खोजिये ॥ २ ॥
जब तुम केवल ग्यान उपायो, देश देश उपदेश सुनायो ।
कियो कल्यान सबहि जीवन को, हमहूं को सुख दीजिये ॥ ३ ॥
पावापुर में मोक्ष सिधारे, कातिक वद पूनम सुखकारे ।
अष्ट करम रिपु वंस उजारे, काल अनंते जी जिये ॥ ४ ॥
वह दिन आज भयो सुख कारी, आनन्द लियो सकल नरनारी ।
लड्डु से करि पूजा थारी, चंपा निज रस पीजिये ॥ ५ ॥

अर्थ

हे महावीर स्वामी अब तो मेरी प्रार्थना को सुन लीजिए, मुझे आपकी प्रार्थना करते हुए बहुत समय हो गया है, अब तो मुझ पर कृपा दृष्टि कीजिए। हे प्रभु ! आप तो अतिवीर कहलाते हैं, सन्मति कहलाते हैं, आप मुझे भी सद्बुद्धि प्रदान कर दीजिये। हे तीन लोक के स्वामी ! जो भी पापी आपके सामने आया उसके सब पाप एक क्षण भर में ही आपकी कृपा से समाप्त हो गये। कामदेव रूपी प्रबल शत्रु का मद भी आपके सन्मुख समाप्त हो गया। आप समस्त सुख, वैभव आदि परिग्रह का त्याग करके बन को चले गये और ऐसे ध्यानस्थ हो गये कि अपने आत्मचिंतन के अतिरिक्त अन्य बाह्य पदार्थों का लेश मात्र भी ज्ञान नहीं रहा और अति शीघ्र ही आपने आत्म बल से चारों घातिया कर्मों का विनाश कर दिया। तदुपरान्त केवल ज्ञान को प्राप्त करके आपने देश देशान्तरों में भ्रमण किया तथा जीवों को उपदेश दिया। हे प्रभु आपने अनेकानेक जीवों का कल्याण किया है अब हमारा भी कल्याण कर दीजिये। हे स्वामी आप स्वयं कार्तिक बदी पूर्णमाशी के दिन पावापुर से मोक्ष को सिधार गये। आपने अष्ट कर्म रूपी शत्रु के वंश का समूल नाश कर दिया और काल पर भी विजय प्राप्त कर ली। हे प्रभु ! उस आपके मोक्ष प्राप्ति करने के दिन का आज तक सभी नर-नारी बड़ी भक्ति से लड्डू चढ़ा कर पूजा करते हैं। कवित्री 'चंपा' कहती हैं कि ऐसा करके आत्मा को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

बस कीनो महावीर, मेरा मन हो ।
औंघट घाट पंजी, आप विराजैं जी, निकट नदी के तीर ॥
आसपार चारे जी कंवल विराजैं जी, बीच बिचा राजैं महावीर ।
दूर-दूर के जात्री आये जी, शोभा रची गंभीर ॥
जो - जो ध्यावैं जी, सोई फल पावैं जी पातिग होइ तगीर ।
द्यानतदास जी तिहारा है प्रभु जी, राखो चरनन तीर ॥

अर्थ

हे भगवान् महावीर ! आप के पवित्र दर्शन कर लेने के उपरान्त अब और कुछ इच्छा नहीं रही । आपके दर्शनों से मैं तृप्त हो गया हूँ । हे प्रभु ! आप नदी के किनारे औघट घाट पर विराज रहे हैं, आपके चारों ओर कमल के पुष्प खिल रहे हैं तथा उनके मध्य में आप "श्री महावीर स्वामी" विराजमान हैं । आपके पवित्र दर्शनों के हेतु दूर दूर के यात्रीगण आ रहे हैं, जिससे कि इस स्थान की शोभा द्विगणित हो रही है । हे प्रभु ! जो आपका स्मरण करता है उसे मनवांछित फल की प्राप्ति हो जाती है, यहाँ तक कि पतित भी पवित्र हो जाते हैं । 'द्यानत' कविराय कहते हैं कि हे प्रभु ! मैं तो आपके चरणों का सेवक हूँ, आप मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिये ।

श्री महावीर स्वामि जी, प्रबल सिवपुर पधारे हैं।
शुक्ल धर ध्यान चौथे से करम रिपु चूरि डारे हैं॥टेक॥
हुआ निर्वाण कल्याणक श्री अतिवीर स्वामि का।
सुरासुर आन कर कीना महोत्सव वीर स्वामि का॥
भले सन्मति प्रभु मेरे तुहारे नाम सारे हैं॥ १॥
निकंटक पावापुरी नगरी तहाँ ते मोक्ष पाई है।
भली कातिक बदी मावश करम की जड़ नशाई है॥
दिवस दिन आज का वह है हुआ आनन्द हमारे हैं॥ २॥
निकस संसार के दुख से न फिर जग माँहि पाते हैं।
प्रभु दृग ग्यान सुख वीज अनतान्त पाते हैं॥ ३॥
आपने तो निजानंद ले वास शिवपुर में जाकीना।
यही अरमान है स्वामि न हमें प्रभु संग नहिं लीना॥
कहे कर जोर के चंपा शरन तुमरी निहारे हैं॥ ४॥

अर्थ

श्री महावीर स्वामी मोक्ष को सिधार गये हैं। प्रभु ने शुक्ल ध्यान को धारण करके सभी कर्म रूपी शत्रुओं का विनाश कर दिया है। श्री महावीर स्वामी जी का निर्वाण कल्याणक बड़े वैभव से मनाया जा रहा है। अनेक प्रकार के देवतागण आनन्द व उल्लास सहित श्री वीर प्रभु का महोत्सव मना रहे हैं। मेरे सन्मति प्रभु के अनेक नाम हैं। आपने निर्मल पावापुरी क्षेत्र से मोक्ष को प्राप्त किया है। कार्तिक महीने की अमावस्या को हे स्वामी! आपने अपने सभी कर्मों को निःशेष कर दिया है। उस पवित्र दिन का स्मरण करके हमको आनन्द प्राप्त होता है। एक बार मोक्ष प्राप्त करने के उपरान्त ससार के कष्टों से मुक्त होकर फिर इस संसार में आना नहीं होता है और अनन्त हर्ष, ज्ञान, सुख, वीर्य "सिद्ध स्वरूप" प्राप्त हो जाता है। हे प्रभु ! आपने तो आत्मसुख का अनुभव करके मोक्ष को प्राप्त कर लिया। हमें तो यही अरमान शेष है कि प्रभु शिवपुर जाते समय आपने हमको साथ नहीं लिया। कविनी "चंपा" हाथ जोड़ कर कहती है कि हे प्रभु ! मैं आपकी शरण में ही हूँ मेरा भी कल्याण कीजिए।

श्री वर्द्धमान–आरती

करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवानथान की।
राग बिना सब जग जन तारे, दोष बिना सब कर्म विदारे।
शीलधुरन्धर, शिवतियभोगी, मन वच काय कहिए जोगी।
रत्नत्रयनिधि, परिगह डारी, ज्ञानसुधा भोजन व्रत धारी।
लोक अलोक व्याप निज माँहि, सुखमें इन्द्रिय सुखदुख नाहीं।
पंचकल्याणक पूज्य विरागी, विमल दिगम्बर, अम्बर त्यागी।
गुन मनि भूषण, भूषण स्वामी, जगत उदास, जगंता जामी।
कहें कहाँ लौं, तुम सब जानो, "द्यानत" की अभिलाष प्रमानो।

गुटका श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार,
धर्मपुरा, देहली, नं॰ १२ ग पृष्ठ ३३.

अर्थ

मैं वर्द्धमान भगवान् की आरती करता हूँ। पावापुर भगवान् का निर्वाण स्थान है, मैं उस पवित्र निर्वाणतीर्थ की वन्दना करता हूँ। भगवान् बिना रागपरिणति के संसार के जीवों को तारने वाले हैं। वह दोषरहित एवं कर्मों का विदारण करने वाले हैं। वह शील धुरन्धर हैं, मोक्षलक्ष्मी के साथ रमण करने वाले हैं। वह मन वचन और काय से योगी हैं। भगवान् रत्नत्रय के निधि हैं, अपरिग्रही हैं और सम्यक्ज्ञान (सर्वज्ञत्व) रूप पीयूष का पान करने वाले व्रतधारी हैं। उनके अपने आत्मा में ही लोक-अलोक व्याप्त हैं। भगवान् अनन्त सुख सम्पन्न हैं, उन्हें इन्द्रियजन्य सुख-दुःख नहीं हैं। भगवान् विरागी हैं, उनकी पंचकल्याणक विधि है। वह निर्मल हैं, दिगम्बर हैं—सर्वथा वस्त्र का त्याग रखनेवाले हैं, वह गुणरूप मणि-आभूषणों से भूषित हैं। वह संसार से उदासीन (उत्+आसीन= ऊपर विराजमान) हैं तथा अन्तर्यामी हैं। कहाँ तक कहें, हे भगवन्! आप सब जानते हैं, अतः "द्यानत" की अभिलाषा को पूर्ण कीजिए।

श्रीभद्रबाहु स्वामिप्रसादात् एष योगः फलतु ।

उवसग्गहरं स्तोत्र

'उवसग्गहरं पासं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं ।
विसहर-विसणिण्णासं मंगल-कल्लाण-आवासं ॥ १ ॥
विसहर-फुलिंगमंतं कंठे धारेई जो सया मणुओ ।
तस्स गहरोगमारी दुट्ठजरा जंति उवसामं ॥ २ ॥
चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामोवि बहुफलो होइ ।
णरतिरिएसुवि जीवा पावंति ण दुक्खदोगच्चं ॥ ३ ॥
तुह सम्मते लद्धे चिंतामणि कप्पपायवब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं जीवा अयरामरं ठाणं ॥ ४ ॥
इअ संथुओ महायस ! भत्तिब्भर निब्भरेण हिअएण ।
ता देव दिज्ज बोहिं भवे भवे पास जिणचंद ॥ ५ ॥

—श्रीभद्रबाहुविरचितम्

'उपसर्गहरं स्तोत्रं कृतं श्रीभद्रबाहुना ।
ज्ञानादित्येन संघाय शान्तये मंगलाय च ॥'

प्रकाशक एवम् मुद्रक :
धूमी मल विशाल चन्द
स्टेशनर्स - प्रिंटर्स - पेपरमर्चेंट्स
दुजाना हाउस, चावड़ी बाजार
दिल्ली-६